भारत में मतदान-व्यवहार

अध्ययन का इतिहास और उभरती चुनौतियाँ

संजय कुमार

अनुवाद : विवेक रत्न

लोकतांत्रिक देशों में चुनावों के समय होने वाला मतदान राजनीतिक सहभागिता का सबसे प्रत्यक्ष स्वरूप है। इन चुनावों के समय दुनिया-भर के विद्वान और शोधकर्त्ता मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझानों को मापने की कोशिश करते हैं। चुनावों के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मतदाताओं के मत और रुझानों पर आधारित मतदान के स्वरूप और प्रवृत्ति को समझना है। परंतु चुनाव के अध्ययन का उद्देश्य चुनाव के दौरान घटित होने वाले विभिन्न घटनाक्रमों का सिर्फ़ वर्णन और लेखा-जोखा प्रस्तुत करना नहीं है। इसके बजाय, इसका मक़सद मतदाताओं के मतों और उनकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर उस चुनाव की किसी विशिष्ट घटना की कारणात्मक गतिशीलता की पुनरावृत्ति की वैज्ञानिक तरीक़े से पहचान करना और उसकी व्याख्या करना भी है। चुनाव कराने वाली संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले आँकड़े विश्लेषकों को प्रेरणा देते हैं कि वे थोड़ा और आगे बढ़कर जनमत सर्वेक्षण के माध्यम से चुनावी आँकड़े जमा करें ताकि मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझानों को भी मापा जा सके। मतदान-व्यवहार को मापने के विविध कारण हैं, परंतु इसका मुख्य उद्देश्य चुनाव में मतदान के स्वरूप को समझना है। मतदान के स्वरूप को समझने के लिए कुछ मूलभूत मुद्दों, जैसे लोग वोट क्यों डालते हैं या क्यों नहीं डालते,

वे मतदान के निर्णय तक कैसे पहुँचते हैं, और चुनावों में मतदाताओं के शामिल होने और उनकी सहभागिता से जुड़े प्रश्नों की जाँच की जाती है। चुनाव का अध्ययन और परीक्षण मुख्यत: मतदाताओं के एक समूह के व्यवहार और रुझान की तुलना उसी चुनाव के मतदाताओं के दूसरे समूह से की जाती है। यह माना जाता है कि अगर हम यह समझ जाएँ कि किसी चुनाव में मतदाताओं के वोटों में अंतर के लिए उत्तरदायी कारक कौन से हैं तो हम उसके परिणाम के लिए उत्तरदायी कारक और चुनाव की विशेषताओं की कुंजी को समग्र रूप से समझ सकते हैं।[1]

मतदान-व्यवहार का मापन क्यों

चुनाव के अध्ययन का एक मुख्य उद्देश्य चुनावों में होने वाले फेरबदल को समझना है अर्थात जीतने वाले दलों के औसत लाभ और हारने वाले दलों के औसत लाभ और हारने वाले दलों की औसत हानि को समझना है। वोटों में होने वाले फेरबदल चुनाव के नतीजों की व्याख्या करने में दो प्रकार से मदद करते हैं— पहला जीतने वाले प्रमुख दलों के पक्ष में मतदाताओं के समर्थन में होने वाली अभिवृद्धि के स्तर को मापने में, और दूसरा किसी पार्टी के वोटों के लाभ या हानि और उसकी सीटों की संख्या के लाभ या हानि के बीच के संबंधों को सुव्यवस्थित रूप से मापने में। मतदान-व्यवहार को मापने के लिए समय-समय पर होने वाले सैम्पल सर्वे से हमें पिछले चुनावों का क्रमबद्ध रूप से आँकड़ा प्राप्त हो जाता है। इन चुनावी आँकड़ों का प्रयोग मतदान-व्यवहार और रुझानों की तुलनात्मक रूप से व्याख्या करने और मतदान के स्वरूप और प्रवृत्ति में होने वाले परिवर्तनों को समझने में किया जाता है। चुनाव के अध्ययन के लिए प्रारूप का निर्माण मतदान पूव या पश्चात् सर्वेक्षण के रूप में चुनावी अध्ययन द्वारा किया जाता है। इसमें पिछले चुनाव में जिन मतदाताओं का साक्षात्कार किया गया था उन्हीं से सम्पर्क स्थापित करके फिर से साक्षात्कार किया जाता है।[2] हालाँकि पैनल डिज़ाइन में कई व्यावहारिक समस्याएँ और मुश्किलें हैं लेकिन इसका लाभ यह है कि इसमें साक्षात्कार देने वाले को यह याद रहने की सम्भावना बहुत कम होती है कि उसने पिछले चुनाव में किस प्रकार का रुझान या मत अभिव्यक्त किया था और इस प्रकार हमें मतदान-व्यवहार की अस्थिरता का ज़्यादा विश्वसनीय अनुमान होता है।[3]

भारत में मतदान-व्यवहार को मापने और चुनावों के विभिन्न पहलुओं की छानबीन का उद्देश्य कमोबेश दुनिया के दूसरे देशों के ही समान है। हालाँकि इस प्रक्रिया में अपने देश की निजी विशिष्टताओं का भी ख़्याल रखा जाता है। भारत में चुनाव के अध्ययन के लिए जनमत सर्वेक्षण की ज़रूरत पर प्रकाश डालने से पहले हमारे लिए यह जान लेना प्रासंगिक होगा कि आधिकारिक तौर पर चुनाव से संबंधित किस प्रकार की जानकारियाँ एवं किस तरह के आँकड़े उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त यह जानना भी ज़रूरी है कि भारत के निर्वाचन आयोग ने अपने अभिलेखागार में कब से इन जानकारियों और आँकड़ों को संरक्षित रखा है। भारत का निर्वाचन आयोग आज़ादी के बाद से ही भारत में सम्पन्न सभी आम चुनावों और राज्य विधानसभाओं के चुनावों के परिणामों और आँकड़ों को अपने पास रखता है। ये आँकड़े आम लोगों के लिए भी सुलभ हैं और इनकी इलेक्ट्रॉनिक कॉपी

[1] जॉन कर्टिस (2000), 'द फ़्यूचर ऑफ़ इलेक्शन स्टडीज : मिड-लाइफ़ क्राइसिस और न्यू यूथ ?' वर्किंग पेपर नंबर 78, http://www.crest.ox.au.uk

[2] कर्टिस और सीमेको (१९९4); डब्लू. ई. मिलर और जे.एम. शेन्क्स, (१९९6), *द न्यू अमेरिकन वोटर,* हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, कैब्रिंज, एम ए.

[3] एच.टी. हिम्मेलवेट, एम. जर्गर और जे. स्टॉकडेल, (१९78), 'मेमॅरी फ़ॉर पास्ट वोट : इम्पलीकेशन्स ऑफ़ अ स्टडी ऑफ़ वायस इन रिकॉल', *ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल साइंस,* खण्ड 8, अंक 4.
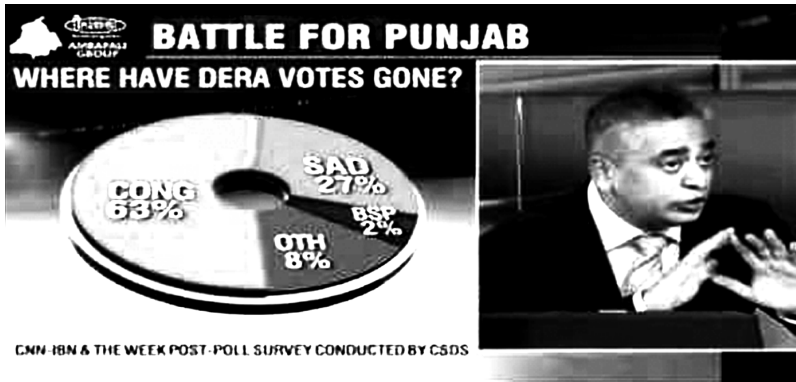
उनकी आधिकारिक वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। भारत का निर्वाचन आयोग निम्नलिखित प्रकार की जानकारियाँ उपलब्ध कराता है : संसदीय और विधानसभा चुनाव में वोट डालने वाले लोगों की संख्या, अर्थात वोटर टर्नआउट; राष्ट्रीय/राज्य स्तर के चुनावों में भाग लेने वाले उम्मीदवारों की सूची, चुनावों में जीतने वाला उम्मीदवार और उसका प्रमुख प्रतिद्वंद्वी तथा इसके साथ-साथ सभी उम्मीदवारों को प्राप्त मतों का प्रतिशत; चुनाव में भाग लेने वाले राजनीतिक दलों की संख्या और उन्हें प्राप्त मत। निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किये गये उम्मीदवारों और उनमें जीत प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों की संख्या भी बताता है। चौथा निर्वाचन आयोग लैंगिक आधार पर विभाजन करके चुनाव में भाग लेने वाले उम्मीदवारों की संख्या और चुनाव जीतने वालों की संख्या भी बताता है। इसके अतिरिक्त वह किसी विशिष्ट चुनाव में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से जीतने वाले उम्मीदवारों से संबंधित जानकारी भी देता है और अंततः निर्वाचन आयोग अपने अभिलेखागार में चुनाव में भाग लेने वाले उम्मीदवारों द्वारा भरे गये शपथ-पत्रों का भी संग्रह रखता है। इन शपथ-पत्रों में उम्मीदवारों द्वारा भरे गये विवरण, जैसे— उनके ख़िलाफ़ चल रहे न्यायिक मामले, उनकी सम्पत्ति और अन्य व्यक्तिगत जानकारियाँ आम लोगों के सूक्ष्म परीक्षण के लिए उपलब्ध होती हैं।

भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली जानकारियाँ चुनाव में मतदान-प्रक्रिया की तथ्यात्मक जानकारियाँ होती हैं। ये सभी जानकारियाँ चुनावी परिणामों को मात्रात्मक रूप में अभिव्यक्त करके दी जाती हैं। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि निर्वाचन आयोग मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझान से संबंधित कोई भी आँकड़ा उपलब्ध नहीं कराता है। मसलन वह यह नहीं बताता है कि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक परिवेश और जाति-समुदाय से संबंध रखने वाले लोगों ने चुनाव में किस प्रकार मतदान किया; उन्होंने किसे वोट दिया या किसे वोट नहीं दिया; और उन्होंने किसी विशिष्ट दल या उम्मीदवार को वोट क्यों दिया? क्या युवा मतदाताओं की राजनीतिक वरीयताएँ वृद्ध मतदाताओं की तुलना में अलग थीं? क्या अधिकांश महिला मतदाताएँ मतदान का निर्णय लेते समय अपने पति द्वारा निर्देशित हुई थीं? किसी विशिष्ट चुनाव के दौरान किस चुनावी मुद्दे ने मतदाताओं के मस्तिष्क को सबसे ज़्यादा प्रभावित किया? इस प्रकार के अनेकों शोध-प्रश्न हैं जिनका जवाब भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले परिणामों और उनके आँकड़ों के आधार पर नहीं दिया जा सकता है। निर्वाचन आयोग द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले आँकड़ों के आधार पर चुनाव से संबंधित कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर भी नहीं ढूँढ़े जा सकते हैं, जैसे, क्या भारत में मुसलमान मतदाता दक्षिणपंथी राजनीतिक दल भाजपा को वोट देते हैं अथवा क्या वे

एक रणनीति के तहत संगठित होकर उसे चुनाव में हराने के लिए वोट डालते हैं?

ऊँची जातियों के मतदाताओं को कांग्रेस या भाजपा जैसे राष्ट्रीय दलों का पारम्परिक समर्थक माना जाता है। परंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या वे हमेशा राष्ट्रीय दलों को ही वोट डालते हैं या फिर कुछ राज्यों में ऊँची जातियों के मतदाताओं का वोट भी क्षेत्रीय दलों की ओर खिसक रहा है? भारत में दलित और आदिवासी समुदायों के मतदाताओं का मतदान स्वरूप कैसा रहा है? क्या अनुसूचित जातियों / जनजातियों की पहचानों पर आधारित राजनीतिक दलों के गठन ने अनुसूचित जातियों/ जनजातियों के वोटों को उनके पक्ष में संगठित किया है? क्या मतदाताओं का चुनावी विकल्प उनकी विभिन्न पृष्ठभूमियों (शिक्षित / निरक्षर, ग्रामीण / शहरी, अमीर / ग़रीब) के आधार पर बहुत ज़्यादा बदलता है? इस तरह के प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय चुनावों में मतदान के व्यावहारिक या सांदर्भिक पहलुओं का अध्ययन महत्त्वपूर्ण हो जाता है। वस्तुत: चुनावों का अनुभवमूलक अध्ययन करके ही इन प्रश्नों का प्रमाणों पर आधारित जवाब प्राप्त किया जा सकता है, बिना प्रमाण के इन प्रश्नों का जवाब देने की कोशिश करना महज़ अटकलबाजी होगी जो हमें सच्चाई से कोसों दूर ले जा सकती है।

मतदान-व्यवहार को मापने के उपागम

भौतिक या जीव विज्ञान विषयों की तरह ही चुनाव के अध्ययन में भी मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझानों को वैज्ञानिक तरीक़े से मापने की कोशिश की जाती है ताकि उच्च स्तर की परिशुद्धता के साथ मात्रात्मक रूप में उसे अभिव्यक्त किया जा सके। हालाँकि चुनावों के अध्ययन में हम जिस मतदान-व्यवहार और रुझानों को मापते हैं वे परिकल्पनात्मक होते हैं; दूसरी ओर, भौतिक विज्ञानों में हम जिन तत्त्वों को मापते हैं वे वास्तविक और साकार होते हैं। लोगों के व्यवहार और रुझान निराकार तत्त्व हैं जिन्हें व्यक्तियों के किसी समूह के उत्तर देने की प्रवृति का पता लगाने के लिए निर्मित किया जाता है। इन निराकार तत्त्वों को विज्ञान के विषयों के तत्त्वों की तरह सटीक और शुद्ध तरीक़े से नहीं मापा जा सकता है। मतदान-व्यवहार और रुझान में मतदाताओं के विचार और रुख समाविष्ट होते हैं जो कुल मतदाताओं में से बहुसंख्यकों की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। चुनाव के अध्ययन में मतदाताओं के एक सैम्पल के मतदान-व्यवहार और रुझानों को वैज्ञानिक तरीक़े से मापने की कोशिश की जाती है ताकि उच्च स्तर की परिशुद्धता के साथ मात्रात्मक रूप में उसे अभिव्यक्त किया जा सके। हालाँकि चुनावों के अध्ययन में हम जिस मतदान-व्यवहार और रुझानों को मापते हैं वे परिकल्पनात्मक होते हैं; दूसरी ओर, भौतिक विज्ञानों में हम जिन तत्वों को मापते हैं वे वास्तविक और साकार होते हैं। चुनाव के अध्ययन में मतदाताओं के एक सैम्पल के मतदान-व्यवहार और रुझान को मात्रात्मक रूप में मापा जाता है ताकि उसके आधार पर सम्पूर्ण मतदाता मंडल का सामान्यीकरण किया जा सके अर्थात् उसका अनुमान लगाया जा सके। इस प्रकार मतदान-व्यवहार और रुझानों को विभिन्न वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करके उचित मात्रा में शुद्धता के साथ मात्रात्मक रूप में मापा जा सकता है। हालाँकि यह भौतिक और जीव विज्ञानों की तरह शुद्ध नहीं होता है।

मतदान-व्यवहार को मापने का तात्पर्य सिर्फ़ मतदान के रिकार्ड का परीक्षण करना, मतदान की सांख्यिकी का संकलन करना और मतदान में हुए फेरबदल की गणना करना नहीं है। दरअसल मतदान-व्यवहार से तात्पर्य किसी व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसे उसकी मनोवृत्ति, भावना और प्रेरणा के मतदान के निर्णय से संबंध की व्याख्या करना है। इसमें इस बात की भी व्याख्या की जाती है कि किसी समूह की संरचना और कार्य का उसकी राजनीतिक कार्यवाही से क्या संबंध है? इसके साथ-साथ संस्थात्मक प्रतिमानों, जैसे संचार की प्रक्रिया के चुनाव पर पड़ने वाले प्रभावों की भी व्याख्या की जाती है।[४] मतदान-व्यवहार और रुझान की व्याख्या में इस बात की भी व्याख्या की

जाती है कि कोई मतदाता मतदान के निश्चय तक कैसे पहुँचा। उसने किसे वोट दिया या वह किसे वोट दे सकता है, उसने किन तर्कों के आधार पर मतदान किया, वे कौन से मुद्दे थे जिन्होंने उसके मतदान के निर्णय को प्रभावित किया, सरकार के कामों से मतदाता की संतुष्टि का स्तर तथा शासक दल और नेतृत्व की लोकप्रियता के स्तर से उनकी संतुष्टि आदि सभी इसके अंतर्गत आते हैं। मतदान-व्यवहार में मतदाताओं की सहभागिता का मानक और चुनावों में उनकी सहभागिता का स्तर भी आता है। अधिकांश राजनीतिक और सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए 'राजनीतिक व्यवहार' और 'मतदान-व्यवहार' के अध्ययन का मतलब मनुष्यों के किसी ऐसे व्यवहार का अध्ययन करना बिल्कुल नहीं है जो अन्य दूसरे प्रकार के अध्ययनों से वैचारिक रूप में एकदम ही अलग हो। राजनीतिक व्यवहार और मतदान-व्यवहार के अध्ययन में अगर कुछ भिन्नता है तो वह व्यवहार के सिद्धांत या मात्रा के कारण नहीं है। इसके बजाय, यह भिन्नता उन संदर्भों की वजह से है जिनमें किसी व्यक्ति के व्यवहार का परीक्षण किया जा रहा है, जैसे - सरकारी संस्थानों के संदर्भ में व्यवहार का परीक्षण किया जाना।[5]

विभिन्न अकादमिक विषयों के लिए मतदान-व्यवहार और रुझान को मापने का मतलब अलग-अलग है और वे एक-दूसरे से अलग कारकों की छानबीन और संकलन करते हैं। समाज वैज्ञानिक या सामाजिक-सांदर्भिक उपागम उस सामाजिक परिवेश पर बल देते हैं जिसमें कोई व्यक्ति या मतदाता कार्य करता है और जिससे उसका मतदान-व्यवहार प्रभावित होता है।[6] राजनीति के सांदर्भिक सिद्धांत नागरिकों की व्यक्तिगत क्रियाओं को व्यक्तिगत स्तर पर परिभाषित की गयी परिस्थितियों के आपसी संबंध के रूप में समझा जाना चाहिए।[7] इस प्रकार व्यक्ति का व्यक्तिगत व्यवहार, व्यक्तिगत विशेषताओं के समुच्चय से बने पर्यावरण पर निर्भर करता है। 'कोई सिद्धांत सांदर्भिक तब होता है जब कुछ व्यक्तिगत विशेषताओं के समुच्चय (जैसे औसत आय, औसत उम्र इत्यादि) में होने वाले परिवर्तन के कारण उन व्यक्तियों के व्यवहार में भी परिवर्तन दिखायी देने लगता है जो उन विशेषताओं के समुच्चय को साझा करते हैं।'[8] स्प्रेग इस अवस्था को 'सामाजिक प्रतिध्वनि' कहते हैं। उनके ऐसा कहने का कारण यह है कि यहाँ व्यक्ति द्वारा धारण किया जाने वाला व्यक्तिगत गुण पर्यावरण के उसी गुण से बार-बार टकरा कर सुदृढ़ हो रहा है।[9] मतदान-व्यवहार को मापने का समाजशास्त्रीय

---

[4] सेमुअल जे. एल्डर्सवेल्ड (१९५१), 'थियरी एण्ड मेथड इन वोटिंग विहेवियर रिसर्च', *द जर्नल ऑफ़ पॉलिटिक्स,* खण्ड १3, नंबर १.

[5] वही :70-87.

[6] मार्टिन जॉनसन और अन्य, (१999), 'कॉन्टेक्सचुअल डेटा एण्ड द स्टडी ऑफ़ इलेक्शंस एण्ड वोटिंग बिहेवियर : कनेक्टिंग इंडीविजुअलस टू इनवायरोमेन्ट्स' http://www.indiana.edu/~workshop/paper/stein.pdf

[7] आर. राबर्ट हकफेल्ड और जॉन स्प्रेग, (१993), 'सिटिजंस कांटेक्स्ट्स एण्ड पॉलिटिक्स', एडा डब्ल्यू. फिनीफर (सम्पा.) *पॉलिटिकल साइंस : द स्टेट ऑफ़ द डिसीप्लीन II. अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन* : वाशिंगटन, डी.सी.

[8] वही (१993) : 28१

उपागम सामाजिक-आर्थिक चरों, जैसे— वर्ग, व्यवसाय, जातीयता, लिंग और उम्र का प्रयोग करके राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के लिए मतदाताओं के समर्थन और उनके बीच के आपसी संबंध को निर्धारित करता है। इस उपागम का मुख्य उद्देश्य मतदाताओं और उनके सामाजिक परिवेश के बीच के आपसी संबंध, सामाजिक संदर्भ में मतदान के निश्चय तक पहुँचने की प्रक्रिया और मतदान-व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्न चरों, जैसे - जाति-समुदाय, सामाजिक-आर्थिक वर्ग और ग्रामीण-शहरी विभाजन आदि का परीक्षण करना है।

दूसरी तरफ़ राजनीति विज्ञान का विषय मतदान-व्यवहार का आकलन राजनीतिक कारकों जैसे - चुनावी मुद्दे, राजनीतिक कार्यक्रमों, चुनाव प्रचारों और मतदाताओं के मतों और रुझानों के आधार पर राजनीतिक दलों और नेताओं की लोकप्रियता आदि के आधार पर करना है। चुनाव के अध्ययन में राजनीति विज्ञान की जिज्ञासा मुख्यत: तीन क्षेत्रों पर केंद्रित होती है : मतदाताओं की संरचना और उनकी प्रेरणाएँ, दलों और चुनावी तंत्र की कार्यवाही और उनका प्रभाव तथा अंत में मतदान-व्यवहार पर सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं का प्रभाव। राजनीतिक सिद्धांतकारों का सरोकार राजनीतिक समुदाय और राजनीतिक प्राणियों को समझने से है और शायद वे इन्हें एकदम सही और सामान्य कथन की भाँति समझना चाहते हैं।[10] हालाँकि राजनीति विज्ञान विषय द्वारा मतदान-व्यवहार और रुझानों के माप ने कोई ऐसा निष्कर्ष या स्वरूप प्रतिपादित नहीं किया है जिसके आधार पर किसी वृहत सिद्धांत का निर्माण किया जा सके। परंतु वह मतदाताओं के राजनीतिक व्यवहार की एक सुनिश्चित तरीक़े से व्याख्या करने में सफल रहा है। चुनाव के अध्ययन के लिए उपरोक्त दो उपागमों के अलावा भी अन्य उपागम हैं, जैसे— पारिस्थितिकीय या सांख्यिकीय समुच्चय उपागम और तार्किक-चयन उपागम, जिनसे मतदान-व्यवहार और रुझानों को मापा जाता है। पर्यावरणीय या सांख्यिकीय समुच्चय उपागम मतदान के स्वरूप और प्रवृत्ति का किसी वार्ड या ग्राम पंचायत जैसे भौगोलिक क्षेत्र, निर्वाचन क्षेत्र और राज्य की चारित्रिक विशेषताओं के साथ आपसी संबंध ढूँढ़ने की कोशिश करता है।

तार्किक-चयन या संस्थात्मक-संदर्भ उपागम मतदान की व्याख्या तर्कों की उस श्रृंखला के आधार पर करने की कोशिश करता है जिसका प्रयोग करके व्यक्तियों द्वारा अपनी लागत और लाभ का आकलन किया जाता है। इस उपागम में इस बात को जानने की कोशिश की जाती है कि किसी व्यक्ति ने विभिन्न राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों द्वारा अपनायी गयी नीतियों और उनके द्वारा उठाये गये मुद्दों का अपने वांछित चुनाव-परिणामों के संदर्भ में किन तर्कों के आधार पर तुलनात्मक आकलन किया। संस्थात्मक संदर्भ एक विशिष्ट प्रकार की संस्थात्मक संरचना, नियम और प्रक्रिया का हवाला देते हैं जो औपचारिक या अनौपचारिक तौर पर व्यक्तियों के बीच के संबंध को भी परिभाषित करता है। इस अर्थ में यह व्यक्तियों के व्यवहार को भी प्रभावित करता है। समस्त वोटों को विनियमित करने वाले मतदान के नियम, प्रतिनिधित्व की प्रणाली और मताधिकार का विस्तार चुनाव के परिणामों को और व्यक्तिगत मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझानों को प्रत्यक्ष तौर पर और तात्त्विक रूप में प्रभावित करते रहे हैं।[11] यह उपागम चुनाव के अध्ययन के लिए विभिन्न संस्थाओं के संबंध में मतदाताओं के विचारों और मतों को मापता है। इसके आधार पर एक सीधी-सपाट व्याख्या प्रस्तुत करता है कि मतदान के नियमों और नियमन ने मतदाताओं की व्यक्तिगत पसंद और चुनावी परिणाम को किस प्रकार प्रभावित किया। इस खेल से निकलने वाला परिणाम सम्भावित

---

[9] जॉन स्प्रेग, (१982), 'इज देयर अ माइक्रो - थियरी कॉन्सिसटेंट विद कॉन्टेक्स्चुअल ऐनॉलिसिस?' इन इलिनर ऑस्ट्रोम (सम्पा.), *द नेचर ऑफ़ पॉलिटिकल इन्क्वैरी*, सेज, बेवर्ली हिल्स, सी अ : 101.

[10] सेमुअल जे. एल्डर्सवेल्ड (१95१)

[11] मार्टिन जॉनसन और अन्य, (१999).

परिणाम की उपयुक्तता, व्यक्तिगत वरीयता और इस परिणाम को शासित करने वाले नियमों पर निर्भर करता है... ।[12] इसमें बाहरी नियमों को मापने का स्तर अकेले चुनावी शोध की इकाई और स्तर से निर्धारित होता है। पहले प्रत्येक उपागम के लिए चरों को विशिष्ट और पृथक माना जाता था। वर्तमान समय में सामाजिक विज्ञानों के विभिन्न उपागमों द्वारा मतदाताओं के मतदान–व्यवहार और रुझानों को मापने के लिए चरों का अंतर्विषयक आदान–प्रदान किया जा रहा है। इस प्रकार जाति, समुदाय, धर्म, सामाजिक–आर्थिक वर्ग आदि जैसे का पहले सिर्फ़ समाज विज्ञानियों द्वारा प्रयोग किया जाता था, अब उनका प्रयोग राजनीतिक वैज्ञानिकों द्वारा लोकतांत्रिक देशों में मतदाताओं के मतदान–व्यवहार और रुझान को मापने के लिए धड़ल्ले से किया जा रहा है।

मतदान–व्यवहार का परिमापन : एक ऐतिहासिक अवलोकन

भारत में हाल के वर्षों में भारतीय मतदाताओं के मतदान–व्यवहार, उनके राजनीतिक मत और रुझानों को मापने के लिए कराये जाने वाले चुनाव सर्वेक्षण बहुत लोकप्रिय हुए हैं। पिछले एक दशक में सम्पन्न हुए चुनावों के दौरान भारतीय मतदाताओं के बीच बड़ी संख्या में कराये गये जनमत सर्वेक्षण इस तथ्य का प्रमाण हैं कि हमारे देश में चुनावी सर्वेक्षण और सर्वेक्षण उद्योग की लोकप्रियता बढ़ी है। वर्ष 2004 और वर्ष 2009 में सम्पन्न हुए पिछले दो आम चुनावों में तो चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और एक्ज़िट पोल कराने के लिए भारतीय मीडिया में भीषण प्रतियोगिता देखी गयी। हालाँकि मीडिया के बीच में होड़ अंततः इस बात को लेकर होती है कि सम्भावित चुनावी परिणाम की सबसे सटीक भविष्यवाणी कौन कर सकता है। इसके साथ ही सीटों का सबसे सटीक पूर्वानुमान करके कौन यह बता सकता है कि कौन सी पार्टी चुनाव जीतने जा रही है और मुख्य राजनीतिक दलों को कितनी सीटें प्राप्त हो सकती हैं। परंतु इस के साथ–साथ मीडिया में इस बात को लेकर भी होड़ होती है कि किसके पास कितना बड़ा सैम्पल है और कौन अपने नतीजों को दर्शकों/पाठकों के बीच सबसे पहले परोस सकता है। भारतीय मतदाताओं के मतदान संबंधी निश्चय को सामने लाने के अलावा मीडिया मतदाताओं के मत और रुझान तथा उनके मतदान–व्यवहार से संबंधित नतीजों की बड़े पैमाने पर रिपोर्टिंग करता है। वर्ष 2009 में सम्पन्न हुए आम चुनावों के दौरान मीडिया द्वारा कराये गये चुनाव–पर्व सर्वेक्षण के परिणामों के शीर्षक सिर्फ़ राजनीतिक नहीं होते थे। मसलन यह शीर्षक नहीं होता था कि 'यूपीए दौड़ में आगे, लेकिन बहुमत की रेखा तक पहुँचने में विफल', 'यूपीए को लाभ, ऐनडीए थोड़ा पीछे।' वस्तुतः उनके पंचलाइन/शीर्षक द्वारा समाज के एक वर्ग का मतदान–व्यवहार भी परिलक्षित होता था, जैसे – 'युवाओं का मत दलों का राजनीतिक भाग्य निर्धारित करेगा।' पोलस्टर और सेफ़ोलॅजिस्ट सिर्फ़ एक ज्योतिषी का किरदार नहीं निभाते। मसलन वे सिर्फ़ इस बात की भविष्यवाणी नहीं करते कि राजनीतिक गठबंधनों, यूपीए, ऐनडीए, लेफ़्ट फ्रंट और अन्यों को कितनी सीटें मिलेंगी। इसकी बजाय, वे मतदाताओं के मतदान–व्यवहार और रुझानों की भी व्याख्या करने लगते हैं, वे यह भी बताने लगते हैं कि किन मुद्दों का चुनाव पर कितना प्रभाव पड़ेगा।

इस पृष्ठभूमि में हमारे लिए यह जानना प्रासंगिक होगा कि क्या भारत में चुनाव की भविष्यवाणियाँ तथा मतदान–व्यवहार और रुझान की व्याख्या करने के लिए जनमत सर्वेक्षण कराना हाल–फ़िलहाल की घटना है जो 21वीं शताब्दी में शुरू हुई है या फिर इसकी जड़ें पिछली शताब्दी में जाती हैं। भारत में मतदाताओं के मतदान–व्यवहार और रुझान को मापने की शुरुआत कब से हुई और इसके पीछे

[12] चार्ल्स आर. प्लॉट, (१978), 'रॉल्स थियरी ऑफ़ जस्टिस : ऐन इम्पसिबिलीटी रिजल्ट', हेन्स डब्लू. गॉटिंगर और वेर्नर लीनफेलर (संपा.), *डिसीजन थियरी एण्ड सोशल इथिक्स, इशूज़ इन सोशल चॉयस,* रेनडेल, डॉडरेंच, हॉलैंड.

क्या तर्क और उद्देश्य थे? क्या भारत में मतदान-व्यवहार के लिए अपनायी गयी प्रणाली पश्चिम दुनिया से सीधे ली गयी अर्थात् उनकी कार्बन कॉपी थीं या फिर इन प्रणालियों ने भारतीय समाज की विविधता और विजातीयता का ध्यान रखा? वे विभिन्न चरण कौन से हैं जिनसे होकर चुनाव सर्वेक्षण और जनमत सर्वेक्षण की प्रक्रिया को गुज़रना पड़ा और इतना समय बीत जाने के बाद इसमें क्या नये परिवर्तन और विकास हुए हैं, भारत में मतदान-व्यवहार को मापने की अन्य प्रणालियों जैसे - चुनाव क्षेत्र का अध्ययन, एलीट स्टडी, केस स्टडी या एथनोग्राफी अध्ययन की तुलना में सर्वे प्रणाली सबसे ज़्यादा लोकप्रिय क्यों है?

भारत में चुनावी सर्वेक्षण की शुरुआत कोई हाल-फ़िलहाल की घटना नहीं है। भारतीय मतदाताओं के मत और रुझानों को मापने के लिए संस्थात्मक स्तर पर किये जाने वाले जनमत सर्वेक्षण की पहली शुरुआत 1950 के दशक में ही शुरू हो चुकी थी। डॉ. एरिक डा कोस्टा ने अमेरिकी संस्था अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ़ पब्लिक ओपिनियन की तर्ज़ पर 1950 के दशक के प्रारम्भ में ही इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ पब्लिक ओपिनियन (आई.आई.पी.ओ) की स्थापना की थी। उन्हें भारत में चुनाव का अध्ययन करने वालों में अगुआ होने का श्रेय दिया जाता है तथा भारत में जनमत सर्वेक्षण का पिता कहा जाता है। वे पेशे से एक अर्थशास्त्री थे जिनकी प्राथमिक रुचि उपभोक्ता से संबंधित अध्ययनों में थी। लेकिन उन्होंने भारत में आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर जनमत सर्वेक्षण भी प्रारम्भ किया। आई.आई.पी.ओ. ने दिल्ली, पश्चिम बंगाल और केरल में कुछ राजनीतिक अध्ययन किये थे। इन अध्ययनों के नतीजे उस संस्था के प्रथम जर्नल मंथली पब्लिक ओपिनियन स्टडीज़ (एम.पी.ओ.एस.) में 1995 में प्रकाशित हुए थे। इस प्रकार भारत में चुनावी सर्वेक्षण कराने का मार्ग प्रशस्त हुआ। आई.आई.पी.ओ. भारत का पहला संगठन था जिसने चुनावी सर्वेक्षण किया था। 1957 में दूसरे लोकसभा चुनाव के पूर्व अखिल भारतीय स्तर पर पहला जनमत सर्वेक्षण कराया गया। इस जनमत सर्वेक्षण के आधार पर पहली चुनावी भविष्यवाणी की गयी जो एकदम सटीक साबित हुई। इस सर्वे ने भारतीयों के मतदान-व्यवहार पर केंद्रित किया था और यह दिखाने का प्रयत्न किया था कि मतदाताओं द्वारा मतदान करने के निश्चय में किस प्रकार उनकी आय, धर्म और व्यावसायिक पृष्ठभूमि के आधार पर अंतर होता है। इस सर्वे ने राजनीतिक नेताओं की लोकप्रियता भी जानने की कोशिश की थी और इसके आधार पर दल के नेताओं की लोकप्रियता की एक सूची भी प्रकाशित की गयी थी। इस प्रकार आई.आई.पी.ओ. द्वारा कराये गये चुनावी सर्वेक्षण का मुख्य फ़ोकस इस बात पर था कि मतदाता मतदान करने का निश्चय किस प्रकार करते हैं और उनके वोट देने के निर्णय को जाति, समुदाय, देश के प्रमुख राजनीतिक मुद्दे, नेताओं की लोकप्रियता आदि किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

एरिक डा कोस्टा ने आई.आई.पी.ओ. द्वारा कराये गये सर्वेक्षण की समीक्षा करते हुए 1980 में कहा था कि 'उस समय वास्तव में यह भी पता नहीं था कि अखिल भारतीय स्तर पर जनमत सर्वेक्षण करना सच में सम्भव है भी या नहीं। निरक्षरता की समस्या और भारत के कई क्षेत्रों में रैण्डम सैम्पल के संचालन में आ रही समस्याओं के कारण यह बहुत मुश्किल लग रहा था। सच्चाई यह है कि यह प्रयोग असाधारण रूप से सफल सिद्ध होगा यह तब तक प्रमाणित नहीं हुआ जब तक कि 1957 में पहला राष्ट्रीय सर्वेक्षण प्रकाशित नहीं हो गया।' आई.आई.पी.ओ. ने अखिल भारतीय स्तर पर पहला जनमत सर्वेक्षण ही संचालित नहीं किया बल्कि उसने चुनाव परिणामों की भविष्यवाणी भी प्रारम्भ की। डॉ. कोस्टा ने कहा था कि 'जनमत की महान शक्ति पर शोध करके विदेशों में मतदान के निश्चयों और परिणामों की भविष्यवाणी की जाती थी या फिर अनेकों संवदेनशील विषयों पर विचारों को जाना जाता था। 1957 में पहली बार भारत में उसका प्रयोग किया गया। यह कमोबेश एक नये भारतीय आविष्कार के रूप में प्रकट हुआ था।' इस प्रकार आई.आई.पी.ओ. ने 1980 के दशक तक चुनाव सर्वेक्षण कराया परंतु इस संगठन से डॉ. कोस्टा के निकल जाने के बाद इस संगठन की कार्यसूची में चुनावों के लिए

जनमत सर्वेक्षण कराने की कोई ख़ास प्राथमिकता नहीं रही और इसकी निरंतरता टूट गयी।

आई.आई.पी.ओ. के अतिरिक्त व्यक्तिगत स्तर पर भी चुनाव के अध्ययन के प्रयास किये गये। वी.एम. सिरसीकर ने 1967 में सम्पन्न आम चुनावों के दौरान सर्वे के आधार पर पूना लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र का अध्ययन किया था। इस अध्ययन से संसदीय निर्वाचन क्षेत्र जैसे छोटे स्तर पर लोकतंत्र, चुनावों, मतदाताओं की राजनीतिक वरीयता और व्यवहार से संबंधित कुछ रोचक बिन्दु-पहलू निकल कर सामने आये। इस अध्ययन के मुख्य नतीजे इस प्रकार थे : पहला भारत में अधिकांश लोगों को लोकतंत्र, चुनावों और राजनीतिक दलों में विश्वास था। हालाँकि लोकतंत्र और इसकी प्रक्रियाओं में विश्वास का मतदाताओं की शैक्षणिक उपलब्धि के साथ सीधा संबंध था। जो लोग ज़्यादा शैक्षणिक योग्यता रखते थे उनका लोकतंत्र पर कम विश्वास था जबकि उनकी तुलना में कम शिक्षित लोगों का लोकतंत्र पर ज़्यादा विश्वास था; दूसरा जाति और समुदाय पर आधारित अल्पसंख्यक समूहों के मतदाताओं में कांग्रेस पार्टी सर्वाधिक पसंदीदा विकल्प थी; तीसरा कम शिक्षित परिवारों में परिवार के सदस्यों के मतदान के निर्णय पर परिवार के मुखिया का प्रभाव बहुत ज़्यादा था जबकि ऊँची शिक्षा प्राप्त परिवारों में यह तुलनात्मक रूप से कम था; चौथा, उम्मीदवार, दल और जाति-समुदाय मतदान पर निर्णय लेने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे और अंतत: मतदाताओं के व्यवसाय, आय और उम्र मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझान को प्रभावित नहीं करते थे।

1967 में सम्पन्न आम चुनावों के दौरान कीनी ने व्यक्तिगत स्तर पर साक्षात्कार की एक विस्तृत प्रश्नावली का प्रयोग करके नागपुर में एक पैनल सर्वे संचालित किया। उन्होंने साक्षात्कार में उत्तर देने वाले लोगों की लोकसभा और राज्य विधानसभा के चुनावों के लिए दलों की वरीयताएँ जानने की कोशिश की। उन्होंने इसके लिए 'विभाजित वोट' तकनीक का प्रयोग किया। हालाँकि इसमें सैम्पल छोटा था लेकिन फिर भी नागपुर अध्ययन से चुनावों और मतदाताओं के मतदान-व्यवहार से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण नतीजे निकलकर सामने आये। इस अध्ययन ने इस तथ्य को उजागर किया कि कांग्रेस पार्टी द्वारा पेश किये गये मज़बूत नेतृत्व के मुद्दे से प्रभावित होकर मतदाताओं ने उसके पक्ष में वोट दिया। वे राष्ट्रीय या क्षेत्रीय मुद्दों के आधार पर मतदान करने का फ़ैसला नहीं करते थे। इस अध्ययन ने मतदान-व्यवहार से संबंधित इस महत्त्वपूर्ण पक्ष को भी उजागर किया कि वे मतदाता जो चुनावी सभाओं और दलों के प्रचार में खुलकर हिस्सा लेते थे, उनके मतदान के निश्चय ज़्यादा अस्थिर होते थे और उनके बदल जाने की सम्भावना भी ज़्यादा थी। सामाजिक-आर्थिक चरों, जैसे— लिंग, जाति, धर्म, शिक्षा और आय राजनीतिक जागरूकता और प्रभाव के निर्धारण के महत्त्वपूर्ण कारक थे।

मतदाताओं के मतदान-व्यवहार को मापने को इल्डसवेल्ड और बशीरूद्दीन अहमद ने आगे बढ़ाया। इन्होंने 1967 और 1971 में सम्पन्न आम चुनावों का अखिल भारतीय स्तर पर सर्वेक्षण संचालित किया। इसमें संकलित किये गये भारतीय मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझानों के आँकड़ों का अंतर-देशीय तुलना के लिए भी प्रयोग किया गया था। इस चुनावी अध्ययन के नतीजों ने इस बात को सच साबित किया कि पूना अध्ययन के नतीजों को पूरे भारत के लिए लागू किया जा सकता था। इसके साथ ही इस अध्ययन ने देश के मतदाताओं के मतदान-व्यवहार के संबंध में कुछ नयी और भ्रांतियाँ तोड़ने वाली मान्यताओं को भी उसमें जोड़ा। ये नये अवलोकन थे : पहला मतदान-व्यवहार और राजनीतिक वरीयताएँ स्थानों के आधार पर बहुत ज़्यादा नहीं बदली थीं क्योंकि ग्रामीण और शहरी दोनों ने एक समान मत व्यक्त किये थे। दूसरी तरफ़ मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और राजनीतिक वरीयताओं में राज्य के आधार पर अंतर थे; दूसरा वाम दलों और जनसंघ के पारम्परिक समर्थक दूसरी पार्टियों के मतदाताओं की तुलना में अपनी पार्टियों द्वारा उठाये गये मुद्दों से ज़्यादा सहमत नज़र आये; अंतत: ऊँची जातियों के मतदाताओं और उच्च शिक्षा प्राप्त मतदाताओं की चुनावी

राजनीति में कम भागीदारी थी जबकि कम शिक्षित मतदाताओं और दूसरे जाति-समुदायों से संबंध रखने वाले मतदाताओं की भागीदारी तुलनात्मक रूप से ज़्यादा थी।

संस्थात्मक स्तर पर पूरे भारत के सैम्पल सर्वे पर आधारित आम चुनावों के अकादमिक अध्ययन की शुरुआत विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सीएसडीएस), दिल्ली, द्वारा 1960 के दशक में शुरू की गयी। इनका अध्ययन राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (ऐन.ई.एस.) के नाम से लोकप्रिय है। पहला राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन भारतीय मतदाताओं के राजनीतिक व्यवहार, मत और रुझान के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए 1967 में संचालित किया गया था। परंतु इनके अध्ययनों में परोक्ष उद्देश्यों की भी एक व्यापक श्रेणी थी जो भारत में और भारत के बाहर लोकतांत्रिक राजनीति का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए अत्यंत प्रासंगिक बनी हुई है। 1967 में सम्पन्न राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन ने सीएसडीएस में सर्वे रिसर्च की परम्परा प्रारम्भ की। इसने चुनावों को ऐसे अवसर या खिड़की के रूप में प्रयोग करना सिखाया जिसके माध्यम से लोकतांत्रिक राजनीति की प्रवृत्तियों और पैटर्नों को समझा जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि 1967 में संचालित हुआ राष्ट्रीय चुनाव-अध्ययन भारत में बड़े सैम्पल के आधार पर राजनीतिक व्यवहारों और रुझानों को समझने का पहला राष्ट्रीय स्तर का सर्वे-आधारित अध्ययन था। इसके बाद दूसरा राष्ट्रीय स्तर का अध्ययन 1971 के आम चुनावों के दौरान हुआ। 1980 के लोकसभा चुनावों के दौरान सीएसडीएस ने अखिल भारतीय सर्वे के लिए डिज़ाइन तैयार किया और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ पब्लिक ओपिनियन (आई.आई.पी.ओ), दिल्ली ने फ़ील्डवर्क संचालित किया। हालाँकि यह सर्वे पूरी तरह से राष्ट्रीय चुनाव-अध्ययन की श्रृंखला का हिस्सा नहीं था परंतु फिर भी कुछ हद तक इसका प्रयोग श्रृंखला में आये अंतराल को भरने के लिए किया जा सकता है। इन चुनावी सर्वेक्षणों को सीएसडीएस के प्रथम पीढ़ी के सर्वे के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

इस कालावधि के दौरान कराये गये सर्वेक्षणों को सीएसडीएस के सर्वेक्षण की परम्परा के विकास के रूप में चिह्नित किया जा सकता है। इस कालावधि के दौरान संचालित हुए सर्वेक्षणों की मुख्य पहचान सम्भाव्यता सैम्पलिंग, गहन प्रश्नावलियाँ और सख़्त फ़ील्डवर्क था। 1967 में संचालित किये गये सबसे पहले सर्वे ने ही भारत में राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन परम्परा के आधारभूत तत्त्वों को सुस्थापित कर दिया क्योंकि इसने स्व-भारित राष्ट्रीय सम्भाव्यता सैम्पल पर बल दिया। इस सैम्पल में विभिन्न चरणों में स्तरीकृत किए गए रैंडम सैम्पलिंग के आधार पर भारतीय मतदाताओं के बीच की सभी विविधताओं को प्रतिनिधित्व दिया गया। दलों की प्रतिस्पर्धा के आधार पर स्तरीकृत करके कुल 55 लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों को चुना गया। इन सैम्पल किये गये लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों के अंदर विधानसभा के खण्डों और मतदान केंद्र के क्षेत्रों का चयन क्षेत्र के आकार और अनुपात में सम्भाव्यता प्रक्रिया के तहत किया गया था। अंततः जवाब देने वालों का चुनाव सैम्पल में चुने गये मतदान केंद्र के क्षेत्रों की मतदाता-सूचियों से रैंडम सैम्पल के आधार पर चुने गये थे। इसमें अ-प्रतिस्थापन पर बहुत ज़ोर दिया गया था।

1967 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की एक प्रमुख कमी यह थी कि इस सर्वे में महिला मतदाताओं को शामिल नहीं किया गया था। इसका कारण सर्वे के दौरान फ़ील्ड में आने वाली दिक़्क़तें तो थीं ही, इसके साथ ही उस समय यह भी माना जाता था कि महिला और पुरुष मतदाताओं के मतों के बीच में कोई विशेष अंतर नहीं होता है। हालाँकि इस कमी को बहुत जल्द दूर कर लिया गया और 1971 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में महिलाओं को भी सैम्पल में शामिल किया गया था। उस समय चुनाव के अध्ययन के लिए सैम्पल का आकार वर्तमान समय के सैम्पल के आकर की तुलना में छोटा था। यहाँ यह याद रखना भी महत्वपूर्ण है कि यह उस समय के दूसरे राष्ट्रीय अध्ययनों की तुलना में बड़ा था।

इसके साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक व्यवहार की प्रवृत्तियों और पैटर्नों तथा रुझानों को मापने के उद्देश्य से यह पर्याप्त था। इसके अतिरिक्त सैम्पल को बहुत मेहनत से बनाया गया था जिससे एक ऐसे सैम्पल का जन्म हुआ जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व करता था। 1971 में कराये गये सर्वेक्षण का एक विशिष्ट गुण यह था कि इसमें एक ही साथ इलीट सर्वे और क्रॉस सेक्शनल सर्वे कराये गये थे। सैम्पलिंग के अतिरिक्त, 1967 और 1971 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन ने रिसर्च के उपकरण और फ़ील्डवर्क की प्रथा को भी स्थापित किया।

सीएसडीएस द्वारा कराये जाने वाले राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की प्रमुख विशेषता इनके द्वारा सर्वेक्षण के लिए तैयार की गयी विस्तृत प्रश्नावली थी। इन प्रश्नावलियों में 200 से लेकर 300 तक प्रश्न होते थे। इसके लिए आमने-सामने बैठकर एक घंटे से अधिक समय तक बातचीत की जाती थी। इन सूचियों को सिर्फ़ चुनावों के आधार पर नहीं बल्कि राजनीतिक विषयों की व्यापक समझ के साथ डिज़ाइन किया गया था। वस्तुतः ज़्यादा महत्त्व राजनीतिक व्यवहार, मतों और रुझानों की व्यापक विषयवस्तु को दिया गया था और इनके साथ स्थायी मूल्यों से जुड़े कुछ प्रश्न भी थे। उत्तर देने वालों की सामाजिक रूपरेखा का दस्तावेज़ बनाने के लिए व्यापक स्तर पर पृष्ठभूमि से जुड़े कारकों का भी प्रयोग किया गया था। इस सर्वे ने प्रश्नावली को भारत में बोली जाने वाली सभी प्रमुख भाषाओं में सावधानी से अनुवाद करने की प्रथा भी प्रारम्भ की। फ़ील्ड में अनुसंधान करने वालों की भर्ती, उनका प्रशिक्षण, फ़ील्ड वर्क, आँकड़ों का संग्रह और फ़ील्ड वर्क पर्यवेक्षण सीधे सीएसडीएस द्वारा संचालित होते थे। 1980 के दशक के दौरान चुनावों और मतदान-व्यवहार के लिए सर्वे रिसर्च कराना प्रमुख विद्वानों की कार्यसूची में विशिष्ट स्थान नहीं पा रहा था और न ही किसी संस्था ने सर्वे की श्रृंखला को क़ायम रखा। इसके कारण सर्वे के आँकड़ों की श्रृंखला एक लम्बे समय के लिए टूट गयी। वस्तुतः 1990 के दशक के मध्य में सीएसडीएस ने राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की परम्परा को पुनर्जीवित किया और आज भी यह भारत में मतदान-व्यवहार के सबसे प्रतिष्ठित अकादमिक अध्ययन के लिए जानी जाती है।

जनमत-सर्वेक्षण की लोकप्रियता 1980 के दशक में प्रारम्भ हुई जब डॉ. प्रणय रॉय ने भारतीय मतदाताओं के मिज़ाज को जानने के लिए चुनावों के दौरान जनमत-सर्वेक्षण संचालित करना प्रारम्भ किया। डॉ. रॉय की कोशिश थी कि चुनाव के अध्ययन के लिए और सीटों की भविष्यवाणी के लिए जनमत सर्वेक्षणों का वैज्ञानिक तरीक़ा बनाया जाये। इस प्रकार 1989 में डॉ. रॉय ने 'मार्केटिंग एंड रिसर्च ग्रुप' के सहयोग से एक एक्ज़िट पोल संचालित किया। इसमें 77, 000 मतदाताओं का मतदान केंद्रों पर वोट डाल कर बाहर आने के तुरंत बाद साक्षात्कार किया गया था। इस सर्वे ने कांग्रेस के जीतने की भविष्यवाणी की थी जो कमोबेश सटीक थी और बाद में चुनाव के परिणामों ने सर्वे के सटीक होने की पुष्टि की। 'वोट स्विंग' एक बहुत ही लोकप्रिय शब्द बन गया था जिसकी गणना पिछले चुनाव में राजनीतिक दलों को प्राप्त वोटों की तुलना में वोटों के लाभ या हानि के आधार पर की जाती थी। इसके बाद डॉ. रॉय भारत में टेलीविज़न दर्शकों के बीच एक घरेलू नाम बन गए। डॉ. रॉय द्वारा प्रारम्भ किये गये इस पहल को हाथों-हाथ लिया गया और 1990 के दशक में प्रचुर मात्रा में उभरे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की सहायता से मीडिया और जनमत सर्वेक्षण दोनों विकास के पथ पर अग्रसर हो गये। इस प्रकार मतदाताओं के मत और व्यवहार को मापने के लिए चुनावी सर्वे और एक्ज़िट पोल कराना अपने देश में अत्यंत लोकप्रिय हो गया।

भारत में 1990 के दशक में चुनावी सर्वे की लोकप्रियता को बढ़ाने में कई कारकों ने योगदान दिया परंतु मुख्य रूप से तीन कारक थे जिसके कारण इसका विस्तार हुआ : पहला इसने मतदातओं के साथ-साथ राजनीतिक दलों के बीच भी यह जिज्ञासा उत्पन्न की कि चुनाव में कौन जीत सकता है और चुनाव सम्पन्न होने के पहले ही सर्वेक्षण के आधार पर किये जा रहे आकलनों में प्रमुख

राजनीतिक दलों को कितनी सीटें प्राप्त हो सकती हैं; दूसरा चुनाव-पूर्व सर्वेक्षणों ने राजनीतिक दलों को विभिन्न वर्गों के मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और उनके राजनीतिक पसंदों के संबंध में सूचनाएँ उपलब्ध करायीं। चुनाव के आँकड़ों ने विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में दलों के जीतने की सम्भावना और उम्मीदवारों के जीतने की सम्भावना के मूल्यांकन के लिए प्रारम्भिक झुकाव का संकेत दे दिया। ये सूचनाएँ न सिर्फ़ विभिन्न सीटों के लिए उम्मीदवारों के चयन में बल्कि उनके चुनावी प्रचार की योजनाओं के निर्माण के लिए भी महत्वपूर्ण बन गयीं; और अंतत: मीडिया को चुनावी सर्वेक्षणों ने मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझानों पर ढेर सारे आँकड़े उपलब्ध कराये। इससे मीडिया को चुनाव की व्याख्या करने में तथा ज़्यादा व्यापक और विस्तृत तरीक़े से सीटों के पूर्वानुमान करने में मदद मिली। मीडिया की मुख्य जिज्ञासा चुनाव के पहले किये गये चुनावी अध्ययन के आधार पर चुनाव के परिणामों को जानने में थी। इसके साथ-साथ चुनाव का पूर्वानुमान और चुनाव के दौरान सीटों की भविष्यवाणी भी काफ़ी प्रचलित और लोकप्रिय हुई।

21 वीं शताब्दी की शुरुआत भारत में जनमत-सर्वेक्षण उद्योग के अगले चरण के विकास का गवाह है। मीडिया ने चुनावों के दौरान सर्वेक्षण संचालित कराने के लिए विभिन्न मार्केट रिसर्च संगठनों को शामिल करना प्रारम्भ कर दिया। इन सर्वेक्षणों का उद्देश्य मतदाताओं के मिज़ाज को जानना और चुनाव के परिणामों की भविष्यवाणी करना था। मार्केट रिसर्च एजेंसियाँ जैसे ए.सी.नील्सन और ओ.आर.जी. मार्ग के अतिरिक्त नये संगठन जैसे सेंटर फ़ॉर मीडिया स्टडीज़, डेवलपमेंट एण्ड रिसर्च सर्विसेज़, सी वोटर आदि भी जनमत सर्वेक्षणों और एक्ज़िट पोल के इस उद्योग में भारतीय मतदाताओं के मतदान-व्यवहार की व्याख्या करने के लिए शामिल होने लगे। एक्ज़िट पोल एक लोकप्रिय शब्द बन गया। चुनावों का पूर्वानुमान करना तथा राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय चुनावों में किन दलों के गठबंधनों को कितनी सीटें प्राप्त होंगी, इसकी भविष्यवाणी करना इस दशक की एक सामान्य विशेषता बन गयी। प्रिंट मीडिया के बीच इंडिया टुडे ने पहला जनमत-सर्वेक्षण 1989 में प्रकाशित किया और उसके बाद से चुनाव के पुर्वानुमानों के लिए वह सभी प्रमुख चुनावों के लिए लगातार जनमत सर्वेक्षण संचालित कराती आ रही है। इस दौरान में कराये गये चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों ने मुख्यत: मतदाताओं के चुनावी विकल्पों, नेताओं की लोकप्रियता, राजनीतिक मुद्दों पर मतदाताओं के मत और सीटों की भविष्यवाणियों पर फ़ोकस किया। 2004 और 2009 में सम्पन्न अंतिम दो आम चुनावों में लगभग सभी प्रमुख न्यूज़ चैनलों और प्रिंट मीडिया ने जनमत-सर्वेक्षण के संचालन के लिए मार्केट रिसर्च एजेंसियों या फिर दूसरे सर्वेक्षण एजेंसियों का प्रयोग किया। सर्वे के आँकड़ों के आधार पर तथा पोलस्टरों और सीफ़ॉलॉजिस्टों की विशेषज्ञता का प्रयोग करके सीटों की भविष्यवाणियाँ की गयीं जो 2004 में पूर्णत: ग़लत साबित हुईं और 2009 में भी सटीक तो नहीं हुईं परंतु कम से कम इसने चुनाव के परिणामों को सही दिशा में दिखाया।

मतदाताओं के मतों और रुझानों को जानने के लिए चुनावी सर्वेक्षण कराने की प्रक्रिया को 1990 के दशक में राजनीतिक दलों ने भी अपना लिया। राजनीतिक दलों ने सर्वेक्षण संचालित कराने और ज़मीनी स्तर पर मौजूद सच्चाई के बारे में विस्तृत रिपोर्ट जानने के लिए सर्वेक्षण एजेंसियों को भाड़े पर लिया। कांग्रेस पार्टी ने 1996 में अपने वोटों के परिदृश्य को जानने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर सर्वेक्षण का संचालन गुप्त रूप से करवाया। परिणामस्वरूप यह मीडिया में लीक हो गया और इसने ढेर सारे विवादों और नीरसता को जन्म दिया। उसके बाद भाजपा ने अपने पार्टी के लिए एक आंतरिक सर्वेक्षण संचालित किया और पहली बार सावर्जनिक तौर पर उसने उसे स्वीकार भी किया। राजनीतिक दलों द्वारा जनमत सर्वेक्षणों को संचालित कराने के कारणों को संक्षेप में और सबसे बेहतर तरीक़े से स्वर्गीय प्रमोद महाजन ने अभिव्यक्त किया था। उन्होंने कहा था कि चुनावों में मार्केट सर्वेक्षणों का प्रयोग बढ़ता चला जाएगा और इसके साथ ही उन्होंने यह विश्वास भी व्यक्त किया

था कि इस प्रकार के सर्वेक्षण अनिवार्य सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए स्वतंत्र और वैज्ञानिक पद्धति हैं। ये सर्वे पार्टी के नेटवर्कों से ज़्यादा स्वतंत्र होते हैं क्योंकि पार्टी का नेटवर्क ज़्यादातर वही बताता है जो पार्टी को पहले से पता होता है। जबकि मार्केट सर्वे हमें बताता है कि प्रमुख मुद्दे क्या हैं, किन निर्वाचन–क्षेत्रों में पार्टी की मज़बूत पकड़ है और कहाँ पार्टी कमज़ोर है। इन भविष्यवाणियों के आधार पर पार्टियाँ जनसभाओं का आयोजन करती हैं, विज्ञापन–अभियान चलाती हैं व इसी प्रकार के अन्य काम करती हैं। हालाँकि योगेन्द्र यादव ने चुनावों के दौरान राजनीतिक दलों द्वारा जनमत–सर्वेक्षण का सहारा लेने के कारणों के लिए जो तर्क दिया है वह प्रमोद महाजन द्वारा अभिव्यक्त किये गये विचारों से एकदम अलग और विपरीत है। योगेंद्र यादव के अनुसार जब राजनीतिक प्रक्रियाएँ विफल हो जाती हैं तभी मार्केट का सहारा लिया जाता है। उनके अनुसार लोकतांत्रिक राजनीति की नियमित प्रक्रियाओं ने सुचारू रूप से कार्य करना बंद कर दिया है और नेताओं को जनता के बारे में बहुत ही कम जानकारी होती है क्योंकि इस प्रकार का कोई पार्टी संयंत्र नहीं है। ज़मीनी स्तर की सूचनाओं का स्रोत दिनोदिन सिकुड़ता जा रहा है। ऐसे में सबसे ज़्यादा ज़रूरत एक वस्तुगत सर्वे की है ताकि सच्चाई का पता चल सके।

इस प्रकार कई राजनीतिक दलों ने ज़मीनी सच्चाइयों को जानने के लिए सर्वेक्षण कराना प्रारम्भ किया। परंतु हाल के वर्षों में कुछ नेताओं ने व्यक्तिगत स्तर पर भी अपने निर्वाचन क्षेत्रों में सर्वे कराने की शुरुआत की है। हालाँकि इन नेताओं द्वारा सर्वे के नतीजों को कभी–कभी किसी निर्वाचन क्षेत्र में अपनी लोकप्रियता के सबूत के रूप में भी पेश किया जाता है ताकि उसे टिकट मिल सके। इसके साथ ही राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों द्वारा जनमत सर्वेक्षणों का दुरुपयोग छल–कपट के लिए भी किया जाता है। सेंटर फ़ॉर द मीडिया स्टडी के ऐन. भास्कर राव कहते हैं कि जनमत–सर्वेक्षण के व्यावसाय में इसके दुरुपयोग किये जाने की भी अत्यधिक सम्भावना है। प्राय: नेताओं द्वारा अपने वांछनीय निष्कर्षों को साबित करने के लिए जनमत–सर्वेक्षणों को महज़ एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इन लोगों के लिए जनमत सर्वेक्षण व्यवसायिक कार्य न होकर रुपया कमाने का ज़रिया बन गया है। जनमत सर्वेक्षणों के लिए जिन पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है उनमें कुछ ज़रूरी सुधार की ज़रूरत है। कभी–कभी तो सर्वेक्षण करने वाले सैम्पल का आकार तक नहीं बताते हैं और छोटे से अध्ययन, के आधार पर उसे सम्पूर्ण भारत के परिणाम के रूप में दर्शाने की कोशिश करते हैं। वास्तव में कुछ शक्तिशाली लोग पार्टी में प्रभाव अर्जित करने के लिए इस प्रकार के अध्ययनों को एक माध्यम के रूप में प्रयोग करते हैं और इसमें बहुत बड़ी मात्रा में उनका रुपया भी लगा होता है।

सीएसडीएस के चुनावी अध्ययन जिसकी निरंतरता 1980 के दशक में टूट गई थी, वह 1990 के दशक के मध्य में बड़े व्यापक रूप में पुनर्जीवित हुई। सीएसडीएस में लोकतंत्र के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक प्रोग्राम के रूप में लोकनीति का गठन और 1995 में राजनीतिक वैज्ञानिकों के एक अखिल भारतीय नेटवर्क के सृजन ने 1996 में राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के संचालन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस बार पैनल डिज़ाइन सैम्पल का प्रयोग करके अध्ययन को तीन दौर में अर्थात् चुनाव–पूर्व, चुनाव प्रचार के बीच में और मतदान के बाद सम्पन्न कराने की ज़िम्मेवारी ली गयी। पैनल सैम्पल से तात्पर्य है पिछले चुनाव में जिन मतदाताओं से साक्षात्कार किया गया, उन्हीं मतदाताओं के पास साक्षात्कार के लिए दुबारा जाना। इसके अतिरिक्त लोकनीति ने 17, 604 वोटरों के बड़े सैम्पल के साथ एक एक्ज़िट पोल भी प्रारम्भ किया। यह अध्ययन अकादमिक क्षेत्रों और मीडिया दोनों में व्यापक स्तर पर प्रकाशित हुए। यह अनेकों शोध–प्रकाशनों का आधार था और विद्वानों द्वारा भारतीय राजनीति को सामान्य रूप से समझने के लिए और विशिष्ट रूप से इसकी चुनावी राजनीति को समझने के लिए अक्सर इसका इस्तेमाल किया जाता है। 1998 के लोकसभा चुनाव के समय सर्वे के दो दौर अर्थात चुनाव–पूर्व सर्वे और मतदान के बाद सर्वे, 1998 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के

भाग के रूप में कराये गये थे। इसमें 1996 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में जिन लोगों की प्रतिक्रिया ली गयी थी उनके पास जाकर प्रतिक्रिया लेना सम्मिलित था। 1999 के अगले आम चुनाव में यह संस्था सिर्फ़ पोस्ट-पोल सर्वे कराने की अपनी पुरानी प्रथा पर वापस लौट आयी। इसका कारण यह नहीं था कि सीएसडीएसका चुनाव पूर्व सर्वेक्षण पर भरोसा कम हो गया था, या इसमें दिलचस्पी कम हो गयी थी। इसका एकमात्र कारण आर्थिक संसाधनों की कमी थी। राष्ट्रव्यापी बड़े सैम्पल के सर्वे कराने के लिए बड़ी मात्रा में आर्थिक संसाधनों की ज़रूरत होती है। सन् 1996 के बाद लगातार लोकसभा चुनाव होने के कारण, 1999 में उतना संसाधन जुड़ा पाना सम्भव नहीं हो पाया और सीएसडीएसने सीमित आर्थिक संसाधन में सिर्फ़ पोस्ट-पोल सर्वे करने का निर्णय लिया। इस प्रकार इसने टिकाऊ मूल्यों वाले आँकड़ों के सेट को जन्म दिया। 1999 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के दौरान उसी पैनल का साक्षात्कार फिर से किया गया जिनका चयन 1996 और 1998 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के

भारत के राजनीतिक वैज्ञानिकों ने पश्चिम के व्यवहारवाद को इसकी प्रणालीगत मुश्किलों और तकनीकी जटिलताओं को समझे बिना अपना लिया। वस्तुतः इस समय पश्चिमी शोधकर्ताओं पर निर्भर रहने और पश्चिमी देशों में चुनाव के अध्ययन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली तकनीकों और प्रणालियों की बराबरी करने की प्रवृत्ति थी।

लिए किया गया था। इस प्रकार महज़ तीन वर्षों के छोटे से अंतराल में मतदाताओं के राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व करने वाले सैम्पल का प्रयोग करते हुए सर्वे के कुल छह दौर कराये गये।

सीएसडीएस में सर्वे की परम्परा के विकास को समझने के लिए इसके द्वारा भारत में संचालित राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की श्रृंखला को तीन पीढ़ियों में बाँट कर देखना होगा। 1967, 1971 और 1980 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन पहली पीढ़ी के सर्वेक्षण थे जिन्हें सीएसडीएसमें चुनावी अध्ययनों की शुरुआत कहा जा सकता है। 1996 से 1999 तक के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की श्रृंखला को दूसरी पीढ़ी के अध्ययन की संज्ञा दी जा सकती है। 2004 और 2009 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन को सीएसडीएस की परम्परा के चुनावी सर्वेक्षणों की तीसरी पीढ़ी का एक भाग माना जा सकता है। दूसरी पीढ़ी के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (1996-1999) का निर्माण पहली पीढ़ी के चुनावी सर्वेक्षणों के ढाँचे पर ही किया गया था, हालाँकि इसमें कुछ नयी विशेषताओं को भी जोड़ा गया था। पहला और सबसे अधिक ध्यान देने वाला परिवर्तन सैम्पल का आकार था क्योंकि अब सैम्पल का आकार पहली पीढ़ी के सर्वे की तुलना में दो गुना से भी ज़्यादा बड़ा था। एक स्व-भारित राष्ट्रीय सम्भाव्यता सैम्पल बनाया गया था। इस बड़े और विस्तृत सैम्पल में सभी महत्त्वपूर्ण राज्यों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के साथ-साथ राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व को भी सुनिश्चित किया गया था, जबकि पहले, 'प्रोबेबिलिटी प्रोपोर्सनेट टू साइज़' प्रक्रिया का प्रयोग करके संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों और विधान सभा क्षेत्रों की सैम्पलिंग की जाती थी। दूसरा परिवर्तन पैनल डिज़ाइन के साथ कई दौर में सर्वे का प्रयोग करना था। अकेले 1996 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में तीन दौर का सर्वे चुनाव-पूर्व, चुनाव-प्रचार

के बीच में और मतदान के पश्चात सर्वे सम्मिलित था। चूँकि लोकसभा के दो चुनाव बहुत ही कम अंतराल पर हुए इसलिए एक ही पैनल को 1998 और 1999 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के लिए बढ़ा दिया गया था। तीसरा महत्त्वपूर्ण अंतर सर्वेक्षण की प्रक्रिया से जुड़ा था। द्वितीय पीढ़ी के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन ने मतदाताओं के मतों की वरीयता का पता लगाने के लिए नक़ली गुप्त मतदान-पत्र और नक़ली मतदान के बक्से का प्रयोग किया। इस नयी पहल ने पार्टियों को मिलने वाले वोटों का अनुमान लगाने में पहली पीढ़ी की तुलना में बहुत ज़्यादा शुद्धता ला दी।

दूसरी पीढ़ी के सर्वेक्षणों के साथ ही राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन केवल अनुदानों पर निर्भर नहीं रहा बल्कि उसे मीडिया से भी सफलतापूर्वक फंड मिलने लगा। कुछ अग्रणी मीडिया प्रकाशनों जैसे— द हिंदू, इंडिया टुडे, फ्रंट लाइन और इकोनॉमिस्ट ने 1996 और 1999 के बीच के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की मदद की। मीडिया की मदद ने राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की श्रृंखला को ज़्यादा प्रकाश में ला दिया। हालाँकि इसके साथ उसकी ज़िम्मेदारी भी बढ़ गयी और उसे सर्वे पूरा करने के लिए बहुत ही कम समय मिलने लगा। 2004 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन ने सीएसडीएस की तीसरी पीढ़ी के सर्वे की शुरुआत का संकेत दिया। हालाँकि सैम्पल के आकार को बड़ा किया गया था लेकिन पहले प्रयोग में लाये जा रहे स्व-भारित राष्ट्रीय सम्भाव्यता सैम्पल के स्थान पर अब राज्य के स्तर पर सम्भाव्यता सैम्पल बनाया गया था। वस्तुत: सैम्पलिंग का ढाँचा राजनीति में आये परिवर्तन की वास्तविकता को प्रतिबिम्बित कर रहा था। इसमें राज्यों के स्तर पर बनाये गये सम्भाव्यता सैम्पलों के समुच्चय के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर सैम्पल का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की कोशिश की गयी थी। इसके लिए सैम्पल के आकार को दूसरी पीढ़ी के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की तुलना में क़रीब तीन गुणा बड़ा किया गया था ताकि छोटे स्तर के राज्यों को भी सैम्पल में प्रतिनिधित्व दिया जा सके। बेहतर प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए एक ही मतदान केंद्र से सैम्पल में कम लोगों को शामिल किया जाने लगा ताकि एक ही जगह के झुंड के प्रभावों से बचा जा सके। विश्लेषणात्मक अर्थ में, स्व-भारित सैम्पल को त्यागने का मतलब था आँकड़ों के समूह के विश्लेषण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर भारण का प्रयोग करना। राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में कुछ अन्य तरीक़ों से भी विस्तार किया गया था। प्रश्नावली का अनुवाद पहले जितनी भाषाओं में होता था, उसकी संख्या में भी वृद्धि की गयी। पहली बार, प्रमुख भाषाओं की 'बोलियों' के मुद्दे पर व्यवस्थित तरीक़े से ध्यान दिया गया था। राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की श्रृंखला में पहली बार, राज्य की राजनीति और समस्याओं से संबंधित प्रश्नों को शामिल किया गया था, ताकि सर्वेक्षण के आँकड़ों से राज्य-स्तरीय व्याख्या में मदद मिले। सीएसडीएस द्वारा संचालित किया गया 2009 का राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन अब तक के किसी भारतीय आम चुनाव का और शायद दुनिया के किसी भी चुनाव का सबसे बड़ा और सबसे विस्तृत सामाजिक वैज्ञानिक सर्वे है। मतदाता सूची से चुने गये सभी 59, 650 लोगों तक पहुँचा गया था और 37, 365 साक्षात्कारों को पूरा किया गया था। इस विशालकाय सैम्पल के आकार के अतिरिक्त 2009 के इस चुनाव सर्वे ने कुछ नये बदलावों की भी शुरुआत की। ये थे— पहला किसी राष्ट्रीय स्तर के सर्वे में पहली बार सैम्पल में शामिल लोगों को 'विभाजित सैम्पल' के साथ प्रश्नावलियों के पाँच सेट रैण्डमली वितरित किये गये थे। दूसरा, प्रश्नावलियों में व्यापक स्तर पर दूसरी विषयवस्तु से जुड़े कुछ अतिरिक्त सर्वेक्षण के मानदण्डों को भी शामिल किया गया था। इसमें अर्थव्यवस्था, सुरक्षा, सम्प्रदायवाद, लोकतंत्र और सामाजिक मूल्यों जैसे विषयों को शामिल किया गया था; और अंतत: सैम्पल में प्रतिक्रिया देने के लिए जिन लोगों का चयन किया गया था, उनके नहीं मिलने पर उनके स्थान पर दूसरे व्यक्ति की प्रतिक्रिया को 2004 के सर्वेक्षणों के दौरान तो स्वीकार कर लिया गया था परंतु 2009 के सर्वेक्षण के दौरान उसे किसी भी परिस्थिति में स्वीकार नहीं किया गया। उत्तरदाता की प्रतिस्थापन विधि जो, 2004 के सर्वे में अपनायी गयी थी उसे 2009 में अस्वीकार करने की मुख्य वजह यह थी कि इससे सैम्पल के स्वरूप के बिगड़ने

की सम्भावना ज़्यादा हो जाती है।

1990 के दशक में और 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में संचालित हुए राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की श्रृंखला ने कई नये परिवर्तनों की शुरुआत की। रिसर्च की इन नयी तकनीकों ने भारतीय चुनावों के अध्ययन की कला को एक मानक बना दिया। भारतीय मतदाताओं के राजनीतिक मतों, रुझानों और मतदान-व्यवहार को सिर्फ़ मौजूदा समाजशास्त्रीय और राजनीतिक पैराडाइम के अंतर्गत नहीं मापा गया था बल्कि विभिन्न दृष्टिकोण और मापदंडों के साथ इनका विश्लेषण भी किया गया था। सीएसडीएस ने राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की श्रृंखला के अलावा पिछले दशक में राज्य विधान सभा के चुनावों के लिए भी जनमत सर्वेक्षण कराना प्रारम्भ किया। 1996 और 2009 के बीच राज्य स्तर पर मतदाताओं के मतदान-व्यवहार के निर्धारण के लिए कुछ राज्यों को छोड़कर सभी प्रमुख राज्यों में चुनावी सर्वेक्षण का कम-से-कम एक दौर संचालित किया गया। मतदाताओं के मतदान-व्यवहार को मापने के लिए इन विस्तृत चुनावी अध्ययनों के अतिरिक्त सीएसडीएस 2004 से लेकर 2009 तक के चुनावों में भी शामिल रहा। पिछले 5 वर्षों में सीएसडीएस द्वारा चुनावी भविष्यिवाणियों का सीटों के पूर्वानुमान में 70 प्रतिशत सटीकता की सफलता दर के साथ मिश्रित परिणाम रहा था।

चुनावी अध्ययनों का ऐतिहासिक अवलोकन बताता है कि चुनावों के अध्ययन के लिए सर्वेक्षण की प्रणाली भारत में मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझान को मापने के लिए सबसे लोकप्रिय हथियार रहा है और आज भी बना हुआ है। सर्वे प्रणाली के अलावा मतदान-व्यवहार और रुझानों के अध्ययन के लिए कुछ निर्वाचन क्षेत्र स्तर के अध्ययन और एथनोग्राफिक अध्ययनों का संचालन होता रहा है। भारत में राजनीतिक वैज्ञानिकों ने ज़्यादातर मतदाताओं के निर्वाचन क्षेत्र का अध्ययन संचालित किया है जबकि चुनाव में भाग लेने वालों के अवलोकन की पद्धति पर आधारित एथनोग्राफिक अध्ययन ज़्यादातर सामाजिक मानव-विज्ञानियों और समाजशास्त्रियों द्वारा किया गया है। पॉल ब्रास उन पहले व्यक्तियों में से थे जिन्होंने 1977 और 1980 के उत्तर प्रदेश के चुनावों के लिए केस स्टडी पद्धति का प्रयोग किया था। उन्होंने राज्य के पाँच चुने हुए निर्वाचन क्षेत्रों में विस्तृत पर्यवेक्षण पर आधारित फ़ील्ड वर्क रिसर्च संचालित की थी। सुब्रत मित्रा ने भी 1980 के लोकसभा और विधानसभा के चुनावों में उड़ीसा के गाँव में केस स्टडी संचालित की थी। ये दोनों केस स्टडीज़ बताती हैं कि यह पद्धति हमें चुनावों का ज़्यादा व्यापक और स्थानीय स्तर पर सूक्ष्म वर्णन मुहैया कराती है।

अग्रणी समाजशास्त्री एम.ऐन. श्रीनिवास और ए.एम.शाह ने 1960 के दशक के अंत में मतदान-व्यवहार का सहभागी प्रेक्षण संचालित किया। मानव-विज्ञानियों ने भी चुनावों के अवलोकन और मतदाताओं के मतदान-व्यवहार के अध्ययन के लिए तथा विशेषकर चुनाव के सांकेतिक पहलुओं और इससे जुड़े विभिन्न कर्मकांडों के अध्ययन के लिए चुनावों का एथनोग्राफिक अध्ययन संचालित किया। हौसर और सिंगर ने बिहार में 1980 के दशक के दो चुनावों के पर्यवेक्षण पर आधारित अध्ययन संचालित किया। मुकुलिका बनर्जी ने भी पश्चिम बंगाल में 2007 के विधानसभा के चुनावों के दौरान वहाँ एक गाँव में मानव-विज्ञानकीय अध्ययन संचालित किया। इन अध्ययनों ने मतदाताओं के मतदान-व्यवहार के सहभागी प्रेक्षण और चुनावों के गुणात्मक पहलुओं पर ज़्यादा फ़ोकस किया था। इन स्थानीय एथनोग्राफिक अध्ययनों के नतीजों का दायरा सीमित था क्योंकि यह चुनावों की प्रक्रियाओं और गतिकी की व्याख्या बड़े पैमाने पर नहीं कर सकता था। ये अध्ययन चुनाव के मुख्य स्टेकहोल्डरों के मतों को समझने में और साथ ही मतदाताओं के मतदान-व्यवहार को मात्रात्मक रूप में मापने में भी विफल रहे। जब मानव-विज्ञानियों ने विशिष्ट रूप से चुनावों को अध्ययन के लिए चुना तो उन्होंने सभी मात्रात्मक आँकड़ों को नज़रअंदाज़ कर दिया, यहाँ तक कि उन्होंने जनसंख्या

के आकार और सामाजिक–आर्थिक स्थिति से संबंधित सबसे ज़रूरी सूचनाओं को भी भुला दिया।[13]

वर्ष 2009 के आम चुनावों के दौरान एक नयी पद्धति से चुनावों का अध्ययन करने की कोशिश की गयी थी। यह अध्ययन पूरे भारत के 12 स्थानों में विस्तृत चुनावी एथनोग्राफी पर आधारित था। इस 'कम्परेटिव इलेक्टोरल एथनोग्राफी प्रोजेक्ट' का संचालन युनिवर्सिटी कॉलेज़, लंदन, की डॉ. मुकुलिका बनर्जी ने विकासशील समाज अध्ययन पीठ, दिल्ली, की लोकनीति प्रोग्राम के सहयोग से किया था। इस अध्ययन के संचालन का उद्देश्य भारतीय चुनावों के बड़े पैमाने पर किये सर्वेक्षणों और स्थानीय स्तर पर किये गये सहभागितामूलक अनुसंधानों की शक्तियों को एक साथ मिलाकर तुलनात्मक अध्ययन करना था। डॉ. बनर्जी के अनुसार 'कम्पेरेटिव इलेक्टोरल एथनोग्राफी स्टडी' का लाभ इस तथ्य से उभरता है

भारत में चुनावी सर्वेक्षणों के संचालन में चुनौतियाँ कई कारणों से उत्पन्न होती हैं, जैसे– सामाजिक–सांस्कृतिक भौगोलिक विविधताएँ और जनसांख्यिकीय विविधताएँ, ज़्यादा संख्या में राजनीतिक दलों की उपस्थिति, दलों के बीच प्रतिस्पर्धा की बदलती प्रकृति और दो चुनावों के बीच में राजनीतिक दलों का विलय या विभाजन हो जाना।

कि इसमें भारतीय चुनावों के अध्ययन के लिए मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों पद्धतियों की विषयगत शक्तियों और प्रणालीगत पद्धतियों के योग का प्रयोग किया जाता है। जहाँ सर्वेक्षणों से महत्त्वपूर्ण पैटर्नों और विरोधाभासों की पहचान की जाती है वहीं एथनोग्राफरों की सतर्कता, कम संसाधनों में प्रबंधन करने की क्षमता और व्यापक स्तर पर मेल–जोल करने की क्षमता एक साथ मिलकर चुनावी अनुभवों और इसके अर्थों को अनुपूरक बनाती है और प्राय: इसे एक नयी अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। भारतीय चुनावों के अध्ययन को इन दोनों पद्धतियों की विशेषताओं की ज़रूरत हैं ताकि अलग–अलग पद्धतियों और विशेषज्ञताओं के एक साथ मिलकर कार्य करने की स्थिति उत्पन्न की जा सके।

डॉ. बनर्जी के अनुसार इस प्रोजेक्ट में चुनावों का अध्ययन 'नम्बर गेम' और परिणामों पर फ़ोकस करने वाले नीरस सांख्यिकीय विषय के रूप में नहीं किया गया है। इसके बजाय, पूर्ण सांस्कृतिक और सार्वभौमिक अर्थ में किया जाता है, मानो यह भारतीय लोकतंत्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, आधुनिक और सेकुलर पर्व हो। इस प्रकार इस अध्ययन ने भारत में चुनावों के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन में नयी तुलनात्मक समझदारियों और सामूहिक अंतर्दृष्टि को जन्म दिया है। समग्र रूप से यह अध्ययन समकालीन भारत में विशाल क्षेत्रीय भिन्नताओं के बावजूद लोकतंत्र की एक नयी समझ का नेतृत्व करेगा। इस अध्ययन का उद्देश्य भारत में विभिन्न क्षेत्रों के चुनावी अनुभवों की विविधता को सम्मिलित करना है। इसके लिए इस समकालिक अध्ययन में भाग लेने वाले निरीक्षकों की एक टीम द्वारा विभिन्न स्थानों से चुनावी प्रक्रिया और लोकप्रिय सहभागिता के सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इसका उद्‌देश्य चुनावी प्रतिस्पर्धा के सभी पहलुओं— जैसे नामांकन, प्रचार,

[13] शाह और श्रीनिवास, 2007

मीडिया कवरेज़ से लेकर मतदान और परिणामों की घोषणा तक का अध्ययन करना है।

भारत में मतदान-व्यवहार के मापन में चुनौतियाँ

भारत में मतदान-व्यवहार को मापने में समस्याएँ और चुनौतियाँ प्रथम विश्व के दूसरे लोकतांत्रिक देशों की तुलना में बिल्कुल अलग और जटिल हैं। भारत में चुनावी सर्वेक्षणों के संचालन में चुनौतियाँ कई कारणों से उत्पन्न होती हैं, जैसे— सामाजिक-सांस्कृतिक भौगोलिक विविधताएँ और जनसांख्यिकीय विविधताएँ, ज़्यादा संख्या में राजनीतिक दलों की उपस्थिति, दलों के बीच प्रतिस्पर्धा की बदलती प्रकृति और दो चुनावों के बीच में राजनीतिक दलों का विलय या विभाजन हो जाना। एक तरफ़ जहाँ पश्चिमी दुनिया के देशों में मतदाताओं की प्रकृति समरूप है वहीं दूसरी तरफ़ भारत में भाषा, क्षेत्र, धर्म, जाति-समुदाय और नृजातीयता के रूप में व्यापक स्तर पर विविधता होने के कारण मतदाताओं की प्रकृति बहुत ज़्यादा विजातीय— है। भारतीय मतदाताओं का यह विविधतापूर्ण और विजातीय चरित्र यथोचित आत्मविश्वास सिर्फ़ उनकी राजनीतिक वरीयताओं और विकल्पों के संदर्भ में ही परिलक्षित नहीं होता है बल्कि उनके मतदान-व्यवहार में भी सामने आता है। इसके कारण भारत में मतदान-व्यवहार को सटीक तौर पर मापना एक मुश्किल कार्य हो जाता है।

अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में मतदान-व्यवहार को मापना बहुत जटिल कार्य नहीं है क्योंकि वहाँ चुनावी प्रतियोगिता द्वि-दलीय प्रणाली पर आधारित होती है; यानी दो प्रमुख दलों तक सीमित होती है। वहीं दूसरी तरफ़ भारत में आज़ादी के बाद से ही चुनावी राजनीति बहुदलीय प्रणाली पर आधारित थी। हालाँकि शुरुआती वर्षों में कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व ने मतदाताओं के मतदान-व्यवहार और रुझान को मापना तुलनात्मक रूप से सरल और आसान बना दिया था, परंतु 1990 के दशक में कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व ख़त्म हो जाने से और दूसरी तरफ़ एकीकृत विपक्ष के विभाजित हो जाने से राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि हुई। राष्ट्रीय स्तर पर दलों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों की संख्या में भी वृद्धि हुई। इसने भारत में बहुदलीय प्रतिस्पर्धा की शुरुआत की और वोट ढेर सारे राजनीतिक दलों के बीच विभाजित हो गये। इससे मतदान-व्यवहार को मापने का कार्य ज़्यादा चुनौतीपूर्ण और जटिल हो गया।

जनमत-सर्वेक्षण पर आधारित चुनाव के अध्ययनों की सीमाएँ और इसकी आलोचनाओं की शुरुआत 1970 के दशक में ही हुई। विद्वानों ने इस बात की तरफ़ इशारा किया कि पिछले दो दशक में हुए चुनावों के सर्वे भारतीय मतदाताओं के मतदान-व्यवहार को समझने और उसकी व्याख्या में किसी भी प्रकार की विशेषज्ञता हासिल करने में असफल रहे हैं। चुनावी अध्ययनों पर लगाया गया सबसे बड़ा आरोप यह था कि भारतीय मतदाताओं के राजनीतिक व्यवहार से संबंधित किसी भी तरह के सुनिश्चित सूत्रीकरण तक पहुँचने में इसका बहुत सीमित योगदान रहा है। 1990 के दशक ने चुनावों में सिर्फ़ जनमत सर्वेक्षण उद्योग के विकास को ही नहीं देखा बल्कि भारत में मतदान-व्यवहार के मापन में सर्वे रिसर्च की ज़्यादा आलोचनाओं और सीमाओं को भी देखा। चुनावी सर्वे के दायरे और प्रासंगिकता पर विद्वानों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के अतिरिक्त सर्वेक्षण उद्योग पर विवादों और संदेहों के कारण सार्वजनिक तौर पर भी कीचड़ उछाला गया। सर्वेक्षणों पर मतदान-व्यवहार को प्रभावित करने का आरोप लगाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के निर्वाचन आयोग ने मतदान के 48 घंटे पहले से लेकर आख़िरी मत पड़ने तक के बीच में चुनावी सर्वे के प्रचार-प्रसार पर प्रतिबंध लगा दिया।

प्रारम्भिक चरण में चुनौतियाँ

भारत में जनमत-सर्वेक्षण का प्रयोग करके मतदान-व्यवहार मापने के प्रारम्भिक चरण को अत्यधिक

उत्साह और जोश के लिए जाना जाता है, परंतु इसके साथ कई महत्त्वपूर्ण समस्याएँ और चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई थीं। जिस प्रकार स्वतंत्र भारत में किसी नये उद्यम या उद्योग ने शुरुआत के वक़्त आधारभूत संरचनाओं के अभाव के साथ-साथ वित्तीय समस्याओं का सामना किया था, वैसे ही सर्वेक्षण उद्योग के लिए भी स्थिति इनसे अलग बिल्कुल नहीं थी। चुनावों के जनमत सर्वेक्षण के लिए न तो इस क्षेत्र का ज्ञान या विशेषज्ञता उपलब्ध थी और न ही इसे सहायता देने के लिए वित्तीय संसाधन उपलब्ध थी। चुनावी सर्वेक्षण के संचालन के लिए आवश्यक पद्धतियों, प्रक्रियाओं और अभ्यासों की कमी के कारण चुनावी सर्वे रिसर्च में रुचि रखने वाले लोगों के समक्ष अमेरिका या ग्रेट ब्रिटेन जाकर सर्वे रिसर्च की पद्धतियों और तकनीकों को सीखने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था। इसी कारण आई.आई.पी.ओ. को 1957 में अपने पहले चुनावी सर्वेक्षण के संचालन के लिए अमेरिका के गैलप इंटरनैशनल से विशेषज्ञों और तकनीकों की मदद के साथ-साथ वित्तीय मदद भी लेनी पड़ी थी।

पश्चिमी दुनिया से चुनावी सर्वे रिसर्च की पद्धतियों को सीखने और इस क्षेत्र में उनसे विशेषज्ञता अर्जित करने से लाभ के साथ-साथ हानियाँ भी थीं। अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन से सीखी गयी इस सर्वे पद्धति की सबसे बड़ी कमी तो यह थी कि इसे इसके मूल स्वरूप में भारत में लागू नहीं किया जा सकता था। अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन की जनमत सर्वेक्षण एजेंसियों द्वारा विकसित की गयी विशेषताएँ और तकनीकें देशज थीं। ये उन देशों के मतदाताओं के सजातीय चरित्र के अध्ययन के लिए ज़्यादा उपयुक्त थीं। इनके विपरीत, भारत एक विविधतापूर्ण मतदाताओं वाला देश है जिनके राजनीतिक विकल्प और व्यवहार भाषा, धर्म, जाति-समुदाय और नृजातीय आदि कारकों से भी प्रभावित होते हैं। इस प्रकार सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि पश्चिमी दुनिया से सीखी गयी इन पद्धतियों और तकनीकों को भारतीय संदर्भ और परिस्थिति के अनुकूल बनाया जाए।

अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन में चुनावी सर्वेक्षणों को संचालित करने का सबसे प्रचलित तरीक़ा ई-मेल सर्वे, टेलिफ़ोन सर्वे और सीधे सम्पर्क स्थापित करके प्रतिक्रिया लेने वाला सर्वे था। भारत में चुनावी सर्वेक्षणों का संचालन प्रारम्भ से ही मतदाताओं से सीधे सम्पर्क स्थापित करके हो रहा था क्योंकि यहाँ पोस्टल संचार-व्यवस्था के नेटवर्क का और मतदाताओं के पास टेलीफ़ोन का अभाव था। वस्तुतः इस पद्धति से सर्वे के संचालन को सबसे बेहतर तरीक़ा माना जाता है लेकिन इसकी कुछ अंतर्निहित कमियाँ और ख़ामियाँ हैं। इस पद्धति की सबसे बड़ी कमी तो यह है कि यह वित्तीय शक्ति और मानव शक्ति पर बहुत ज़्यादा निर्भर है। दूसरी पद्धति के सर्वेक्षणों जैसे मेल और टेलीफ़ोन से सर्वेक्षण की तुलना में मतदाताओं से सीधे सम्पर्क स्थापित करके सर्वेक्षण करने के लिए विशाल वित्तीय और मानवीय संसाधनों की ज़रूरत पड़ती है। इसके अतिरिक्त यह पद्धति बहुत ज़्यादा समय ख़र्च करने वाली और लम्बी भी है। इसके लिए बहुत बड़ी संख्या में फ़ील्ड अनुसंधानकर्त्ताओं और निरीक्षकों की ज़रूरत पड़ती है।

इस कालावधि के दौरान सर्वेक्षण का डिज़ाइन तैयार करना, उसका क्रियान्वयन और मतदान-व्यवहार को मापना भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ थीं। अखिल भारतीय चुनावी सर्वेक्षण के डिज़ाइन की अवस्था ने ही गम्भीर चुनौती उत्पन्न कर दी क्योंकि इस देश के मतदाता विविध भाषाओं और बोलियों को बोलते थे। इसके लिए साक्षात्कार की प्रश्नावली का अनुवाद करने की आवश्यकता थी। साक्षात्कार की प्रश्नावली और अन्य सामग्रियों को सारी भाषाओं और बोलियों में अनुवाद करना ही अपने आप में बहुत मुश्किल और समय ख़र्च करने वाला कार्य था। अपने उपकरणों का मानक स्तर बनाये रखने के लिए प्रश्नावलियों का अनुवाद करते समय यह सावधानी बरतने की भी आवश्यकता थी कि कहीं इससे शब्दों या प्रश्नों के वास्तविक अर्थ ही न बदल जाएँ। प्रश्नावलियों का विभिन्न भाषाओं और बोलियों में अनुवाद करना न सिर्फ़ एक मुश्किल कार्य था बल्कि इसके लिए बहुत ज़्यादा

ख़र्च और निवेश की भी ज़रूरत थी।

सर्वे के उपकरणों का डिज़ाइन तैयार करने और उसका परीक्षण करने के बाद दूसरा चरण आँकड़ों के संग्रह के लिए फ़ील्ड वर्क संचालित करने का था। इस चरण के दौरान फ़ील्ड वर्क में दो प्रमुख अड़चनें थीं। पहला, फ़ील्ड वर्क के लिए ऐसे कर्मचारियों की ज़रूरत थी जिन्हें सर्वे रिसर्च और साक्षात्कार की तकनीकों का थोड़ा अनुभव हो। हालाँकि उस समय सर्वे रिसर्च में प्रशिक्षित मानव-संसाधन का अभाव था क्योंकि भारत में सर्वे रिसर्च का उद्घाटन एकदम नया था। चूँकि सर्वे के संचालन के लिए उपलब्ध संसाधन बिल्कुल सीमित थे इसलिए प्रशिक्षण में निवेश करना भी लगभग असम्भव था। फ़ील्ड में सर्वे करने वालों में उपयुक्त प्रशिक्षिण की कमी के कारण सर्वेक्षण के दौरान साक्षात्कारकर्त्ताओं का पूर्वग्रह और आत्मनिष्ठता भी सामने आयी। इसके परिणामस्वरूप प्रारम्भिक चरणों में संचालित किये गये चुनावी सर्वेक्षणों में मापन त्रुटियाँ और दूसरे प्रकार की त्रुटियों की गुंजाइश बहुत ज़्यादा थी। दूसरा, आधारभूत संरचना से जुड़ी सुविधा जैसे संचार-व्यवस्था बहुत

भारत के राजनीतिक वैज्ञानिकों ने पश्चिम के व्यवहारवाद को इसकी प्रणालीगत मुश्किलों और तकनीकी जटिलताओं को समझे बिना अपना लिया। वस्तुतः इस समय पश्चिमी शोधकर्ताओं पर निर्भर रहने और पश्चिमी देशों में चुनाव के अध्ययन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली तकनीकों और प्रणालियों की बराबरी करने की प्रवृत्ति थी।

ख़राब थी। इसके कारण फ़ील्ड अनुसंधान कर्त्ताओं की टीम को आवागमन में और सैम्पल में शामिल लोगों से सम्पर्क स्थापित करके साक्षात्कार करने में काफ़ी दिक्क़तें आयीं। इसके परिणामस्वरूप चुनावी सर्वेक्षणों में प्रतिक्रिया की त्रुटियाँ बहुत ज़्यादा हुईं।

इस कालावधि के दौरान संग्रहित किये गये आँकड़ों की गणना करना और उसका विश्लेषण करना भी एक प्रमुख समस्या थी। उस समय आज की तरह आँकड़ों के विश्लेषण के लिए कंप्यूटर और सॉफ़्टवेयर जैसी आधुनिक तकनीकों का अभाव था। इस कारण आँकड़ों का मिलान करना और उनका विश्लेषण करना एक बोझिल प्रक्रिया होती थी। यह पूरी प्रक्रिया या तो शारीरिक श्रम से या फिर टेप्स के द्वारा की जाती थी, इसलिए यह बहुत ज़्यादा समय लेने वाला और श्रमसाध्य काम होता था। इसके साथ ही इसमें गणना और विश्लेषण की त्रुटियों का ख़तरा भी ज़्यादा रहता था।

भारत में मतदान-व्यवहार के अध्ययन के लिए इस कालावधि के दौरान संचालित किये गये जनमत सर्वेक्षणों की कई आधारों पर आलोचनाएँ की गयी। पहला भारत के राजनीतिक वैज्ञानिकों ने पश्चिम के व्यवहारवाद को इसकी प्रणालीगत मुश्किलों और तकनीकी जटिलताओं को समझे बिना अपना लिया। वस्तुत: इस समय पश्चिमी शोधकर्ताओं पर निर्भर रहने और पश्चिमी देशों में चुनाव के अध्ययन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली तकनीकों और प्रणालियों की बराबरी करने की

प्रवृत्ति थी।[14] इस आलोचना का आधार यह है कि इस कालावधि के दौरान संचालित किये गये चुनावी अध्ययनों ने सर्वे तकनीक और पद्धतियाँ मुख्य रूप से युनिवर्सिटी ऑफ़ मिशीगन और अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ़ पब्लिक ओपिनियन से उधार ली थीं। हालाँकि अमेरिका में प्रयोग में लाये जा रहे इन सर्वे तकनीकों को इस आधार पर जाँचने की कोशिश की गयी थी कि यह भारतीय संदर्भ में कितनी उपयुक्त थीं। वस्तुतः भारत में मतदान–व्यवहार और इसकी प्रवृत्तियों को मापने के लिए इन रिसर्च तकनीकों को समुचित संशोधन और अनुकूलन के बाद ही अपनाया गया था।

दूसरा, पिछले दो दशकों में प्रचुर मात्रा में चुनावी अध्ययन हुए परंतु वे विशेषज्ञता के साथ चुनावी परिणामों के अनुमान और भविष्यवाणी करने में या फिर सामान्य रूप में चुनावी प्रक्रियाओं को समझने में असफल रहे।[15] दरअसल, पहला आरोप न सिर्फ़ इस कालावधि के लिए बल्कि वर्तमान समय के लिए भी सही है कि जनमत सर्वेक्षण पर आधारित चुनावी अध्ययन, चुनावी परिणामों की भविष्यवाणी के लिए आवश्यक किसी भी प्रकार की विशेषज्ञता और विशिष्ट कौशल को सामने लाने में असफल रहा है। दूसरी आलोचना में यह कहा गया है कि चुनावी अध्ययन भारतीय मतदाताओं के मतदान–व्यवहार को समझने और उसकी व्याख्या करने के अपने प्रयासों में विफल रहा है। इस आलोचना को पूरी तरह सच नहीं माना जा सकता। अहमद ने स्वयं, अपने उसी लेख में यह कहा है कि वे भारत में चुनावी अध्ययनों को त्याग देने की वकालत नहीं कर रहे हैं। वे कहते हैं कि यद्यपि इसकी भविष्यवाणी करने की क्षमता सीमित है परंतु इसके बावजूद यह मतदाताओं के राजनीतिकरण की प्रक्रियाओं और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के विकास के लिए एक संचयी और टिकाऊ दृष्टिकोण उपलब्ध करा सकता है।

अंततः चुनावी अध्ययनों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि भारतीय मतदाताओं के मतदान–व्यवहार के लिए किसी भी परिशुद्ध सूत्रीकरण तक पहुँचने में इसका योगदान न्यूनतम और सीमित रहा है।[16] चुनावी अध्ययनों की ये आलोचनाएँ और इस कालावधि में मतदान–व्यवहार को मापने में इनकी सीमाएँ महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। परंतु यहाँ यह भी याद रखा जाना चाहिए कि भारत में चुनावी अध्ययनों की यह प्रारम्भिक अवस्था थी और एक विषय बनने के लिए किसी भी उपक्रम को एक गर्भावधि काल की आवश्यकता पड़ती है तथा वर्षों तक इस पर शोध और इसके विकास का प्रयास करते रहना पड़ता है।

द्वितीय चरण की चुनौतियाँ – 1990 के आगे

1990 के बाद भारत में मतदान–व्यवहार को मापने में चुनौतियाँ पहले चरण की तुलना में ज़्यादा जटिल और कठिन हो गयीं भारतीय मतदाताओं के मतदान–व्यवहार और रुझानों को मापने में इस बढ़ती हुई जटिलता और पेचीदगी के लिए कई कारक ज़िम्मेवार हैं। इनमें से दो प्रमुख कारक जिन्होंने भारत में मतदान–व्यवहार के कार्य को कठिन बना दिया, वे थे : पहला, भारत में लोकतांत्रिक राजनीति की बदलती हुई प्रकृति और दूसरा, चुनावी सर्वेक्षण करने वाले सर्वेक्षण उद्योग के फ़ोकस और प्राथमिकता में आया परिवर्तन। इस दौरान चुनावी राजनीति में कुछ नये विकास हुए, जैसे – प्रतिस्पर्धाओं की बहुध्रुवीयता, दलीय गठबंधनों का विकास और इन गठबंधनों के बीच एक–दूसरे के वोटों का हस्तांतरण तथा राजनीतिक दलों के लिए भौगोलिक आधार पर वोटों का संकेद्रण। इस कालावधि में चुनावी प्रतिस्पर्धा के कारण राजनीतिक दलों में भीषण गुटबाजी, बहुत बड़ी संख्या में बाग़ी उम्मीदवारों

[14] बशीरुद्दीन अहमद, (१९७७), 'द इलेक्टोरेट', *सेमिनार,* खण्ड, २१२, अप्रैल.

[15] वही.

[16] वही.

की उपस्थिति और क्षेत्रीय स्तर पर जोड़-तोड़ को भी देखा गया। इनका चुनावी सर्वेक्षण के द्वारा पता लगाना असम्भव है। इस कालावधि में बहुत बड़ी संख्या में मीडिया की उपस्थिति और उनकी चुनावी सर्वेक्षण और परिणाम के पूर्वानुमान के प्रति अभिरुचि के कारण भी चुनावी सर्वेक्षण उद्योग में परिवर्तन आया। चुनावी सर्वेक्षण का मुख्य केंद्र अब भारतीय मतदाताओं के मतदान-व्यवहार को मापने से परिवर्तित होकर सीटों की भविष्यवाणियाँ और चुनावी पूर्वानुमान हो गया।

भारत में द्वितीय चरण में मतदान-व्यवहार के अध्ययन के लिए प्रमुख चुनौती दलीय प्रतिस्पर्धा की प्रकृति ने प्रस्तुत की है। ऐसे राज्य जहाँ दो ही प्रमुख राजनीतिक दल हैं वहाँ अगर सर्वेक्षण ने मतों में उनकी हिस्सेदारी को ठीक तरह से मापा है तो फिर चुनाव के परिणामों का पूर्वानुमान करना बहुत आसान है। दूसरी तरफ़ उन राज्यों में जहाँ बहु-दलीय प्रतिस्पर्धा है वहाँ के चुनावों में सीटों की भविष्यवाणियाँ करना बिल्कुल ही मुश्किल हो जाता है। किसी दल के वोटों की हिस्सेदारी के आकलन में मामूली-सी ग़लती भी पूर्वानुमान को पूरी तरह से उलट सकती है। इस तरह की घटना का एक आदर्श उदाहरण उत्तर प्रदेश राज्य में 2007 के विधान सभा चुनाव के दौरान घटित हुआ था। अधिकांश सर्वेक्षण एजेंसियों ने बसपा के लिए वास्तव में प्राप्त मतों के हिस्सेदारी से सिर्फ़ दो प्रतिशत कम मतों का पूर्वानुमान किया था। मतों की हिस्सेदारी में दो प्रतिशत का यह छोटा-सा अंतराल सर्वेक्षण उद्योग के पूर्वानुमान को उलट देने के लिए पर्याप्त था क्योंकि अधिकांश सर्वेक्षण यह भविष्यवाणी करने में विफल रहे थे कि बसपा स्पष्ट बहुमत के साथ चुनाव जीत सकती है।

प्रारम्भिक वर्षों में संचालित किये गये चुनावी अध्ययन यह दिखाते हैं कि भारतीय मतदाता सामाजिक-सांस्कृतिक और जनसांख्यिकीय पृष्ठभूमियों के आधार पर बहुत ज़्यादा विविधतापूर्ण है। यह विविधता उनके विविध मतदान-पैटर्नों और वरीयताओं में प्रतिबिम्बित होती है। भारतीय मतदाताओं की भाषा, क्षेत्र, जाति-समुदाय और धर्म की पहचान पर आधारित बहुल-पहचान एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इस कारण उनके राजनीतिक जुड़ाव और मतदान-व्यवहार की प्रवृत्ति का पता लगाना बहुत मुश्किल हो जाता है। उदाहरण के लिए पिछले दशक में उत्तर प्रदेश राज्य में संचालित किये गये विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले मुसलमान मतदाताओं के मतदान-व्यवहार में विभिन्नताओं को सही तरीक़े से प्रतिबिम्बित नहीं करता। इसका कारण यह है कि उत्तर प्रदेश में मुसलमान कोई एक समरूप इकाई का निर्माण नहीं करते हैं, जो एकमुश्त वोट डालते हों; बल्कि क्षेत्र, भाषा और पंथ के आधार पर इनके मतदान के पैटर्नों में भी अंतर है। अतीत में संचालित हुए कुछ बड़े आकार के सैम्पल सर्वेक्षणों ने यह दिखाया है कि इस राज्य के मुसलमानों के कुछ वर्गों ने कुछ क्षेत्रों में भाजपा को भी वोट दिया है। मतदाताओं की बहुसांस्कृतिकता और अंतर-सामुदायिक विविधता भारत में मतदाताओं के मतों और रुझानों को मापने में आज भी एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है। भारतीय मतदाताओं की इस बहुस्तरीय विविधता और जटिलता को समाहित करने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि बड़े आकार के सैम्पल सर्वे किये जाएँ। यह बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य नहीं है, लेकिन इसके लिए बहुत ज़्यादा मानव-शक्ति और पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी।

चुनावी राजनीति और सर्वेक्षण-उद्योग में परिवर्तन के अनुरूप ही भारतीय मतदाताओं के मतदान-व्यवहार में भी परिवर्तन हो गया। 1990 के दशक में प्रारम्भ हुई पहचान की राजनीति और तीक्ष्ण सामाजिक-राजनीतिक दरारों के कारण मतदाताओं के मतदान-व्यवहार में महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रारम्भ हुए। मंडल कमीशन आंदोलन और राम जन्मभूमि विवाद ने जाति-समुदाय और धर्म के आधार पर मतदाताओं का ध्रुवीकरण कर दिया। जाति और समुदाय की रेखा के इर्द-गिर्द मतदाताओं के ध्रुवीकरण ने एक विलक्षण समस्या उत्पन्न कर दी। वे भारतीय मतदाता जो पहले चरण में चुनाव-सर्वेक्षकों को अपने मतदान के निश्चय के बारे में सच-सच बता देते थे, अब वे खुले में मतदान के बारे में पूछे जाने पर सच बोलने में संकोच करने लगे। यह इस डर के कारण उत्पन्न हुआ था कि अगर

उन्होंने सच-सच बता दिया कि उन्होंने किस पार्टी को वोट दिया है तो इसका प्रयोग दूसरे राजनीतिक दलों द्वारा उन्हें व्यक्तिगत रूप से पहचानने और निशाना बनाने के लिए किया जा सकता है। यह ज़्यादातर पिछड़े और हाशिये पर पड़े वर्गों के मतदाताओं के साथ हुआ। हालाँकि कुछ परिस्थितियों में अपने मतदान के निश्चयों को छिपाने की यह घटना भारत में प्रभुत्वशाली ऊँची जातियों के बीच भी हुई। इस तरह की घटना का एक आदर्श उदाहरण 2007 में उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनावों के दौरान देखा गया। इस चुनाव में ऊँची जातियों के मतदाताओं की एक बड़ी संख्या ने बसपा (दलित पार्टी) को वोट दिया परंतु उन्होंने जातिगत पूर्वग्रह और अपने जाति-समुदाय के लोगों द्वारा प्रतिशोध के डर से चुनावी सर्वेक्षणों के दौरान इसकी सूचना नहीं दी। इसके परिणामस्वरूप इस चुनाव के दौरान संचालित किये गये अधिकांश चुनावी सर्वेक्षण बसपा के लिए मतों की हिस्सेदारी का पता लगाने और उसकी जीत की भविष्यवाणी करने में असफल रहे।

इस दौरान भारतीय मतदाताओं के बीच चंचलता भी देखी गयी और अस्थिर मतदाताओं की संख्या में भी व्यापक वृद्धि हुई। चुनाव-प्रचार के दौरान संचालित किये गये चुनावी अध्ययन बताते हैं कि लगभग एक चौथाई मतदाताओं ने यह निर्णय नहीं लिया था कि किसे वोट देना है और वे अभी तक निर्णय लेने की प्रक्रिया से ही गुज़र रहे थे। अस्थिर मतदाता चुनाव प्रचार के ख़त्म हो जाने के बाद मतदान का निश्चय करते हैं और अगर किसी विशिष्ट राजनीतिक दल के पक्ष में हवा चल रही हो तो फिर दूसरे राजनीतिक दलों के वोटों में हिस्सेदारी मापना न सिर्फ़ कठिन हो जाता है बल्कि यह चुनौतीपूर्ण और जटिल भी हो जाता है। इसी प्रकार भारत में मतदाताओं के वोटिंग स्वरूप हमें बताते हैं कि कुछ मुद्दे मतदाताओं को भिन्न-भिन्न तरह से और प्रांतीय आधार पर प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए चुनावों में कुछ मुद्दों की क्षेत्रीय और प्रांतीय अपील हो सकता है और यह उनके मतदान के निर्णय का आधार भी बन सकती है। यह सम्भव है कि दूसरे प्रांत के मतदाताओं के लिए इस अपील का कोई महत्त्व नहीं हो और उनके मतदान के निर्णयों को यह किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करे। इस प्रकार सैम्पल सर्वे द्वारा मतदाताओं को प्रभावित करने वाले प्रांतीय या स्थानीय मुद्दों का पता लगाने में विफल रहना, इस पद्धति की प्रमुख कमी और सीमा है।

मतदान-व्यवहार को मापने में अन्य प्रमुख चुनौती सैम्पलिंग के रूप में और सैम्पल के आकार के रूप में आती है। भारत में अधिकांश सर्वेक्षण एजेंसियों द्वारा चुनावी सर्वेक्षण में सैम्पलिंग की जिस पद्धति का प्रयोग किया जाता है, वह ठीक नहीं होती है। इनके सैम्पल में सभी प्रकार के मतदाताओं का प्रतिनिधित्व भी नहीं होता है। अतीत में किये गये चुनावी अध्ययन बताते हैं कि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों और जाति-समुदायों से संबंध रखने वाले लोगों की मतदान में वरीयता अलग-अलग होती है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश राज्य में अधिकांश दलित, मुख्यत: जाटव बसपा के समर्थक रहे हैं जबकि ऊँची जाति के मतदाताओं में अधिकांश लोग भाजपा और कांग्रेस के समर्थक रहे हैं। इसी प्रकार यादव समुदाय के मतदाता समाजवादी पार्टी के कट्टर समर्थक रहे हैं। उत्तर प्रदेश राज्य के सैम्पल में इन जाति और समुदायों के प्रतिनिधित्व का प्रतिशत इस राज्य की जनसंख्या में इनके वास्तविक प्रतिशत के लगभग बराबर होना चाहिए। राजनीतिक विश्लेषक योगेंद्र यादव कहते हैं कि सैम्पल का आकार नहीं बल्कि वह पद्धति निर्णायक होती है जिसके द्वारा सैम्पल को चुना गया है। अधिकांश भारतीय सर्वेक्षण ग़लत होते हैं क्योंकि इनकी सैम्पलिंग की पद्धति बहुत कमज़ोर है जिसके कारण इनके सैम्पल के प्रोफ़ाइल में सबका प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है।[17] इस प्रकार इस कालावधि के दौरान भारत में चुनावी सर्वेक्षणों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चुनौती इनके द्वारा मतदाताओं

[17] *द इंडियन एक्सप्रेस,* 2008.

के मतदान–व्यवहार को मापने के लिए वैज्ञानिक पद्धति और सबका प्रतिनिधित्व करने वाले सैम्पल को अपनाने में विफल रहना है।

इस दौरान उत्पन्न हुई दूसरी महत्त्वपूर्ण चुनौती यह थी कि राजनीतिक दलों की मतों में सही अनुमान कर लेने के बावजूद उसके आधार पर दलों के लिए सीटों का अनुमान लगाना मुश्किल था, परंतु यह चुनौती प्रत्यक्ष तौर पर मतदान–व्यवहार के मापन से जुड़ी हुई नहीं थी। वस्तुतः इस कालावधि के दौरान अधिकांश चुनावी सर्वेक्षणों ने राजनीतिक दलों के लिए मतों में हिस्सेदारी का आकलन लगभग सही किया था, फिर भी कुछ अवसरों पर वे चुनाव के परिणामों के सही आकलन में विफल रहे। विभिन्न राजनीतिक दलों के लिए सीटों के ग़लत अनुमान के लिए कई कारण ज़िम्मेदार हैं। पहला कारण तो यह है कि कई चुनावों में राजनीतिक दलों ने एक–दूसरे के साथ गठबंधन करके प्रतिस्पर्धा की। गठबंधन करके प्रतिस्पर्धा करने का मतलब है कि दोनों दल प्रतिस्पर्धा में एक–दूसरे के वोटों का हस्तांत करेंगे। इसने एक गम्भीर चुनौती उत्पन्न की क्योंकि एक–दूसरे के वोटों के हस्तांतरण का सही आकलन करना और गठबंधन के प्रत्येक साझेदार के लिए सीटों की भविष्यवाणी करना बहुत मुश्किल है। इसके अतिरिक्त राज्यों में भौगोलिक आधार पर उसके कुछ क्षेत्रों में कुछ दलों के लिए वोटों के केंद्रीकरण ने भी सीटों की भविष्यवाणी करना मुश्किल बना दिया। 2008 में सम्पन्न कर्नाटक विधानसभा चुनाव का परिणाम इस तथ्य का प्रमाण–पत्र है। इस राज्य में संचालित सर्वेक्षणों ने यह बताया था कि चुनावों में भाजपा के मतों की हिस्सेदारी कांग्रेस के मतों की हिस्सेदारी की तुलना में कम रहेगी। परंतु चुनावी सर्वेक्षण यह पूर्वानुमान करने में असमर्थ रहे कि भाजपा के वोट इस राज्य के कुछ क्षेत्रों में केंद्रित थे जिसने भाजपा को ज़्यादा सीटों पर जीत दिलायी। दूसरी तरफ़ कांग्रेस के वोट पूरे राज्य में समान रूप से वितरित थे और कई स्थानों पर ये वोट सीटों की जीत में तब्दील नहीं हो सके।

भारत में मतदान–व्यवहार के अध्ययन के लिए संचालित जनमत सर्वेक्षण की इस कालावधि में भी भारतीय विद्वानों द्वारा आलोचना की गयी पहले के समय की तरह चुनाव–सर्वेक्षणों की अब भी इस आधार पर आलोचना होती है कि इसे पश्चिमी दुनिया से सीधे आयात कर लिया गया है जो मतदान–व्यवहार के अध्ययन के लिए उपयुक्त नहीं है। भारत की सामाजिक–सांस्कृतिक विशिष्टताएँ और चुनावी राजनीति की स्थितियाँ अलग हैं, और एक हथियार के रूप में चुनावी सर्वेक्षण इन जटिलताओं को समाहित करने में विफल रहा है। तीसरी दुनिया में आज 'सर्वे रिसर्च' को सबसे ज़्यादा अनुपयुक्त माना जाता है। वस्तुतः यह अमेरिकी विज्ञान की राजनीति का अनुकरण है। यह प्रणालीगत स्तर पर बहुत कमज़ोर, राजनीतिक स्तर पर रूढ़िवादी और सांस्कृतिक स्तर पर अप्रामाणिक थी।[18] चुनावी सर्वेक्षणों की आलोचना उन लोगों द्वारा भी की गयी जिन्होंने मैदान में जाकर गुणात्मक अध्ययन किया था। इनके अनुसार चुनावी सर्वेक्षण मतदान–व्यवहार का व्यापक स्वरूप मात्रात्मक रूप में बताता है। व्यक्तिगत मतदाताओं के मत और रुझान कुछ सामान्य पैटर्नों को बताते हैं और राजनीतिक विकास की विशिष्टताओं को बताने में चूक जाते हैं। इस प्रकार सर्वे पद्धति की प्रमुख सीमा यह है कि छोटे

[18] योगेंद्र यादव, (2008), 'विदर सर्वे रिसर्च ? रिफ्लेक्शंस ऑन द स्टेट ऑफ़ सर्वे रिसर्च ऑन पॉलिटिक्स इन मोस्ट ऑफ़ द वर्ल्ड', मेलकॅम एडिसोशियाह मेमोरियल लेक्चर, चेन्नई.

[19] ए.एम. शाह, *द ग्रासरूट्स ऑफ़ डेमोक्रेसी : फ़ील्ड स्टडीज ऑफ़ इंडियन इलेक्शंस,* परमानेंट ब्लैक, दिल्ली.

समुदायों के मतदान-व्यवहार पर स्थानीय राजनीति के प्रभाव का वर्णन करने में इसकी असमर्थता दिखायी देती है। व्यक्तिगत मतदाताओं को दी गयी प्रश्नावली व्यक्तिगत मतों और रुझानों के बारे में सूचना को सामने ला सकती है, लेकिन यह घटनाओं की व्यापक वास्तविकता को जिसमें व्यक्तियों के समूह लम्बे समय से कार्य कर रहे होते हैं, का वर्णन नहीं कर सकती है।[1~]

संदर्भ

आर. राबर्ट हक़फ़ेल्ड और जॉन स्प्रेग (1993), 'सिटिजंस कांटेक्ट्स एण्ड पॉलिटिक्स', इन एडा डब्ल्यू. फिनीफर (संपा.) *पॉलिटिकल साइंस : द स्टेट ऑफ़ द डिसिप्लिन II : अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन,* वाशिगंटन, डी.सी.

एच.टी. हिम्मेलवेट, एम. जर्गर, और जे. स्टॉकडेल, (1978), *मेमॅरी फ़ॉर पास्ट वोट : इम्पलीकेशंस ऑफ़ अ स्टडी ऑफ़ वायस इन रिकॉल,* ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल साइंस, खण्ड 8, अंक 4.

जॉन कर्टिस (2000), 'द फ़्यूचर ऑफ़ इलेक्शन स्टडीज़ : मिड-लाइफ़ क्राइसिस और न्यू यूथ ?' वर्किंग पेपर नंबर 78, http://www.crest.ox.au.uk.

चार्ल्स आर. प्लॉट (1978), 'रॉल्स थियरी ऑफ़ जस्टिस : ऐन इम्पॉसिबिलिटी रिजल्ट', हेंस डब्ल्यू. गॉटिंगर एण्ड वेर्नर लीनफ़ेलर (संपा.), *डिसीज़न थियरी एण्ड सोशल इथिक्स, इश्यूज़ इन सोशल चॉयस,* डॉडरेंच, रेनडेल, हॉलैंड.

जॉन स्प्रेग, (1982), 'इज़ देयर अ माइक्रो थियरी कंसिस्टेंट विद कॉन्टेक्स्चुअल ऐनालैसिस ?', इलिनर ऑस्ट्रोम (सम्पा.), *द नेचर ऑफ़ पॉलिटिकल इंक्वैरी,* सेज, बेवर्ली हिल्स, सी ए.

डब्लू.ई. मिलर, (1976), 'द क्रॉस-नैशनल यूज़ ऑफ़ पार्टी आइडेंटीफ़िकेशन ऐज़ अ स्टिमुलस टु पॉलिटिकल इंक्वैरी', आई. बज़, आई. क्रीव, , डी. फार्ली, (सम्पा), *पार्टी आइडेंटीफ़िकेशन एण्ड बियोंड : रिप्रज़ेटेशंस ऑफ़ वोटिंग एण्ड पार्टी कम्पटीशन,* विले, लंदन.

डब्लू.ई. मिलर, जे.एम. शेंक्स, (1996), द *न्यू अमेरिकन वोटर,* हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्बिज, एम. ए.

बशीरुद्दीन अहमद, (1977), 'द इलेक्टोरेट', *सेमिनार,* खण्ड 212, अप्रैल.

मार्टिन जॉनसन और अन्य, (1999), 'कॉन्टेक्स्चुअल डेटा एण्ड द स्टडी ऑफ़ इलेक्शंस एण्ड वोटिंग बिहेवियर : कनेक्टिंग इंडीविजुअलस टू इनवायरोमेंन्ट्स' http://www.indiana.edu/~workshop/paper/stein.pdf.

योगेंद्र यादव, (2007) 'इन्वीटेशन टू अ डॉयलॉग : ह्वाट डज़ 'फ़ील्डवर्क' डू इन द फ़ील्ड ऑफ़ इलेक्शंस ?' ए.एम. शाह, द *ग्रासरूट्स ऑफ़ डेमोक्रेसी : फ़ील्ड स्टडीज ऑफ़ इंडियन इलेक्संस,* परमानेंट ब्लैक, दिल्ली.

—— (2008), 'विदर सर्वे रिसर्च ? रिफ्लेक्शंस ऑन द स्टेट ऑफ़ सर्वे रिसर्च ऑन पॉलिटिक्स इन मोस्ट ऑफ़ द वर्ल्ड', मेलकॅम आदिशेसैया मेमॅरियल लेक्चर, चेन्नई.

सेमुअल जे. एल्डर्सवेल्ड, (1951), 'थियरी एण्ड मेथड इन वोटिंग विहेवियर रिसर्च', द *जर्नल ऑफ़ पॉलिटिक्स,* खण्ड 13, अंक 1.